'बुधुआ की बेटी' (मनुष्यानन्द) का यथार्थ–बोध

(एम० फिल० हिन्दी उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध)

2002

शोध–निर्देशिका
डॉ० ज्योतिसर शर्मा

शोधकर्त्ता
बृज किशोर गोयल

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-**110067**

परम् पूज्यनीय

दादी माँ के

संघर्षपूर्ण जीवन

की स्मृतियों

को समर्पित.....

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
School of Language, Literature & Culture Studies
New Delhi-110067, INDIA

Centre of Indian Languages

Date: 03.01.2003

DECLARATION

I declare, that the material in this Dissertation entitled **"BUDHUA KI BETI (MANUSHYA NANAD) KA YTHARTH–BODH"** submitted by me is an original research work and has not been previously submitted for any other degree of this or any other University/Institution.

(BRIJ KISHOR GOYAL)
Research Scholar

(DR. (SMT.) JYOTISAR SHARMA)
SUPERVISOR
Centre of Indian Languages
School of Language, Literature
& Culture Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067

(PROF. MANAGER PANDEY)
CHAIRPERSON
Centre of Indian Languages
School of Language, Literature
& Culture Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067

अपनी खबर....

मैंने बचपन में जो सुना, देखा और जिस त्रासदी से गुजरा, उस गहरे ज़ख्म की याद आते ही, मैं आज भी सहम जाता हूं। विधवा दादी मां का संघर्षपूर्ण जीवन, मेरे दायित्वबोध ा के लिए प्रेरणा स्रोत बनी। आज इसी तरह की जिंदगी करोड़ों गरीब जनता भोग रही है। धर्म, जाति, एवं संस्कृति के नाम पर पूरे देश में उथल-पुथल मचा हुआ है। ऐसे में अत्याचार, बलात्कार, भ्रष्टता और अनैतिकता जैसे कुकर्मो से समाज कैसे उबरे?-यह मेरे लिए भी ज्वलंत मुद्दा बना हुआ है, तभी मैं इस जहालत भरी जिंदगी पर सोचने, लिखने और बोलने के लिए मजबूर हुआ। इस क्रम में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के एक-एक शब्द मुझे उर्जा प्रदान करते हैं क्योंकि 'उग्र' ने भी अपने चिंतन व लेखन में उन्हीं समस्याओं से जुझने का प्रयास किया जो 21वीं सदी के द्वार पर लंबी बहस की मांग कर रही हैं। यही वजह है कि मुझे इस बात की चिंता रही है कैसे सामाजिक विद्रुपताओं एवं आर्थिक शोषण से लड़ा जाय? ऐसी में मेरे अबोध मन और मस्तिष्क कुलबुलाने लगते हैं। मेरी नजरों के सामने गांव में बचपन के दिनों हुए दलित एवं नारी शोषण ने मेरी अछूत-चेतना में व्यापक तेजस्वी परिवर्तन के बीज बो दिए।

बड़े भइया की चाहत-मैं डाक्टर बनूं और बाबूजी का सच्चे ईमानदार एवं सफल व्यक्ति बनने का सपना ही था जो मुझे उत्तरदायित्वबोध एवं प्रतिबद्धता के साथ कर्तव्यलीन होने को विवश करता। पिता जी ने कहा - *'मैं तुम्हे किसी विशेष दायरे में बांधना उचित नहीं समझता।'* बस! मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। मैं अपने कर्तव्यबोध के प्रति स्वतंत्र हो गया और माता जी के 'कठोर श्रम' हमें आज भी रूला देते हैं। आज मैं जो कुछ भी हूं-उसमें दादी मां की 'प्रेरणा', माँ का 'संघर्ष', पिता जी की 'ईमानदारी', भइया का 'अटूट प्रेम', भाभी जी का 'उत्साह' और बहनों का 'सहयोग' मेरे जीवन लक्ष्य का बुनियादी हिस्सा है। मेरी सफलता के पीछे इन सभी का अमूल्य योगदान है। जिसका मैं ऋणी रहूंगा।

मैंने जब से होश संभाला, तब से साहित्यिक गोष्ठियों, सम्मेलनों में जाता रहा। बड़े लोगों के विचारों को सुनता और हाथ झाड़ कर वापस घर लौटता, परन्तु बहुत कुछ लेकर। उसमें असंतोष, खोखली मानसिकता, छद्म रूप, सत्ता लोलूपता, धनपशुता और ख्याली

पुलाव इत्यादि ढ़ेर सारी मान्यताएं होती। इसी व्यवस्था से ऊब कर एक पत्रकार बनने की इच्छा जगी। मैंने सुना था कि एक पत्रकार ही समाज की सारी विसंगतियों पर खुल कर लिख सकता है। तभी मैंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में पत्रकारिता कोर्स में दाखिला ले लिया। इसी दौरान पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के लेखन से रू-ब-रू हुआ। 'उग्र' का यह लिखना कि *'हिंदू मूर्ख हैं, उसे अभी संसार की अनेक ठोंकरें खानी है-तभी उनके यहां, ऊँच हैं, नीच हैं और जातियां-उपजातियां हैं।'* बस! मुझे 'उग्र' के प्रति लगाव के लिए इतना ही काफी रहा।

'उग्र' की पहचान है-भेद खोलना! समाज के अन्वेंषी की तरह। उन्होंने समाज की एक-एक नस का ऑपरेशन किया, ताकि व्यक्ति के अंदर घुस आयी बुराईयों का क्रांतिकारी ईलाज संभव हो सके। इसका प्रमाण 'उग्र' की आत्मकथा 'अपनी खबर' है, जिसको पढ़कर मैं अपने आप को रोक न सका। और निश्चय किया 'उग्र' पर ही लघु-शोध-प्रबंध लिखूंगा। इसमें जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की विचार धारा एवं उपयुक्त माहौल सहयोगी बना।

बी० एच० यू० में अध्ययन के दौरान 'इंटरनेशल सोसल इंस्टीट्यूट', नीदरलैंड द्वारा बाइस महीने की फेलोशिप मिली, परन्तु वहां पारिवारिक एवं आर्थिक दिक्कतों के चलते नहीं जा सका। तब मैंने मन बना लिया, अध्ययन के लिए कहीं जाऊंगा तो सिर्फ जे० एन० यू० ही। और जाता भी कहां-इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पांच साल अध्ययन किया, बी० एच० यू० में पढ़ ही रहा था और अब सामने जे० एन० यू० ही था। किस्मत ने साथ दिया और मैं जे० एन० यू० में दाखिला पा गया। तीन-तीन विश्वविद्यालयों में अध ययन के दौरान हुए तरह-तरह के कटु अनुभव जहां मेरी चिंतन को गतिशीलता देते हैं वहीं मानसिक सुख का भान भी कराते हैं।

खोजी पत्रकारिता का जिज्ञासु भरा मन सदैव मेरे साथ रहा, जिसके कारण कुछ न कुछ बराबर लिखता रहा। यही वजह है कि जब शोध करने का अवसर मिला, तो मैंने रचनात्मक धरातल पर पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का चयन किया। जिन्होंने बीसवीं सदी के तीसरे दशक में जिन-जिन समस्याओं से टकराने की कोशिश की थी वही समस्याएं इक्कीसवीं सदी के दहलीज पर मुंह बायें खड़ी हैं। इनमें हिंदू-मुस्लिम विवाद, धार्मिक कट्टरता, भ्रष्टाचार और दलित एवं नारी अस्मिता संबंधी विमर्श प्रमुख हैं। इनमें प्रमुख रूप से दलित व नारी विमर्श साहित्यिक गलियारों में नई सदी में तेजी से मुखरित हुई हैं। आज

कई तरह के सवाल खड़े किये जा रहे हैं।

आजतक दलित एवं नारी संबंधी विवाद कोई भी स्पष्ट व तार्किक जमीन तलाश नहीं कर सकी है। इसके बावजूद कुछ ऐसे भी साहित्यकार हैं जो यह कहते उकताते नहीं हैं कि दलित साहित्य दलित ही लिख सकता है। और दूसरी तरफ ऐसे भी चिंतकों की भी कमी नहीं है जो यह कहते हैं कि दलित साहित्य कोई भी लिख सकता है। इन सभी विवादों की वास्तविकता को जांचने परखने की मनः स्थिति के कारण ही पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' कृत 'बुधुआ की बेटी' (मनुष्यानंद) पर शोध करने हेतु बेताबी से लपका। क्योंकि यह हिंदी का पहला दलित उपन्यास है, जिसमें अछूतोद्धार, दलित नारी के उनयन, पाखंडी समाज के धनपशु, बूर्जुआ वर्ग की अनैतिकता तथा भ्रष्ट आचरण वाले पंडे, पुरोहितों, फकीरों इत्यादि समस्याएं प्रमुखता से 'उग्र' जैसे एक गैर-दलित लेखक द्वारा उठाई गई हैं। एक संवेदनशील प्राणी होने के नाते उपेक्षित समाज की अटूट वेदना पर रचनात्मक हस्तक्षेप, मैं जरूरी समझता हूं।

मेरे एम० फिल० शोध का विषय 'बुधुआ की बेटी' (मनुष्यानंद) का यथार्थ-बोध' में पांच अध्याय हैं। मेरा पहला अध्याय 'उग्र' के रचनात्मक विकास यात्रा पर केन्द्रित है। इसमें 'उग्र' की अतियथार्थवादी लेखन की उपयोगिता को स्पष्ट रूप से दिखाया गया है। जो इक्कीसवीं सदी के दहलीज पर खड़ी लेखकीय कलम में महसूस की जा रही है। इनके सृजन के केन्द्र में दलित, नारी, हिंदू-मुस्लिम एवं ईसाई हैं। उन्होंने देश में पनप रहे संप्रदायवाद का खुलकर विरोध किया और हिंदू-मुस्लिम समुदाय के बीच प्रेम एवं भाईचारा का संदेश दिया। वहीं अवैज्ञानिक एवं मूर्खतापूर्ण अंधविश्वास के दलदल में फंसी जनता को रोशनी दिखाने की कोशिश भी की। इसके लिए 'उग्र' ने बुद्ध एवं गांधीवादी विचारों का भी सहारा लिया है। 'उग्र' की सभी रचनाओं में आजाद भारत की तस्वीर उभरी है, जिसमें लोग समता-मूलक, न्यायप्रिय समाज एवं खुशहाल जीवन के सपने संजोए थे। 'उग्र' ने यह वैचारिक लड़ाई गुलाम भारत में ही छेड़ी थी। यह 'उग्र' के दूर-दृष्टि का ही प्रतिफलन है।

दूसरे अध्याय में 'यथार्थ-बोध की अवधारणा' पर लंबी बहस की गई है। इसमें स्तांदाल से लेकर चेखव, गोर्की और आर्डोनो तक की चर्चा की गई है, वहीं हिंदी साहित्य में यथार्थवादी चिंतन की अवधारणा का खुलासा किया गया है। और 'बुधुआ की बेटी'

उपन्यास को यथार्थवादी कसौटी पर जांचने की पूरी कोशिश की गई है। इसमें समाज के घृणित कुप्रवृतियों पर कुठाराघात भी किया गया है। 'उग्र' ने संपूर्ण भारत के कुरुप चेहरे को बड़े साहस के साथ दिखाया है। तीसरे अध्याय में समाज की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के वर्चस्व का भंडा-फोड़ किया गया है। इसमें हिंदू-मुस्लिम, ईसाई और अछूत समाज के बीच चल रहे वैचारिक आंदोलनों का बिना लाग-लपेट का चित्रण किया गया है। चौथे अध्याय में 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास के पात्रों की मानसिक दशा का चित्र खींचा गया है। और साथ ही साथ यह दिखलाने का प्रयास किया गया है कि व्यक्ति अपनी सामाजिक एवं धार्मिक परंपराओं से कैसे संचालित होता है। वहीं पांचवे अध्याय में उपन्यास के शिल्पगत विशेषताओं एवं कमजोरियों की जांच-पड़ताल की गई है। इस प्रकार उपन्यास की समन्वयक समीक्षा संपूर्ण अध्यायों में की गई है।

एम० फिल० शोध-प्रबंध में शोध-निदेर्शिका डॉ० ज्योतिसर शर्मा को याद करना चाहूंगा जिन्होंने 'उग्र' जैसे विवादित लेखक पर शोध करने की स्वीकृति प्रदान की। उनका ममत्व, स्नेह एवं सहयोग गुरू-शिष्य परंपरा के अनुकूल रहा। इसके लिए मैं हृदय से उनका आभारी रहूंगा। इस शोध में प्रो० मैनेजर पाण्डेय जैसे विद्वान का सहयोग पाकर फूले नहीं समाया। जो हमेशा एम० ए० और एम० फिल० अध्ययन के दौरान नई दृष्टि से परिचय कराते रहे। डॉ० पुरूषोत्तम अग्रवाल मुझे हमेशा कुछ कर गुजरने के लिए उत्साहित किया करते, ताकि मैं छात्र जीवन को सार्थकता प्रदान कर सकूं। वहीं मैंने डा० वीर भारत तलवार से सुव्यवस्थित चिंतन व लेखन का गुण पाया और उन्होंने ईमानदारी व लगन से अध्ययन करने का मंत्र दिया। डा० गोविंद प्रसाद की चुप्पी सदैव कुछ बोलने व कहने का आभास दिलाती रही। मैं उपरोक्त सभी गुरूजनों का आशीर्वाद व शोध-विषयक दिशा-निर्देश पाकर अपने को गौरवांवित महसूस करता रहा हूं। मैं सभी को हृदय से नमन करता हूं।

इसी क्रम में डा० बजरंग बिहारी तिवारी को हार्दिक आभारी हूं, जिन्होंने इस उपन्यास को पढ़कर मेरा मागदर्शन किया। डा० मुकेश मानस की आत्मीय संवेदना हमेशा मेरे साथ रही एवं डा० महेन्द्र बेनीवाल और राजेश भइया का सदैव आशीर्वचन मिलता रहा। इन सभी का मैं शुक्रगुजार हूं।

अब मित्रवत सहयोग की बात करूं.....इस क्रम में संगीता और संजय का नाम लेना उचित होगा, जिसने अपने तमाम व्यस्तताओं के बावजूद सभी तरह के संवेदनाओं से जुड़े रहे और लघु शोध-प्रबंध के दौरान सहायक सामग्री के साथ सहयोग के लिए सदैव

तत्पर रहे। कृपाशंकर जी का मित्रवत व्यवहार को कैसे भूला सकता हूं जिन्होंने हमेशा कुछ नया करने को प्रेरित किया। वीर अभिमन्यु, दिनेश भैया एवं लल्लन जी का स्नेह हमेशा मेरे साथ रहा। इलाहाबादी मित्र सदैव कुछ नया करने की मांग करते रहे। लतेश के योगदान को कैसे भूला सकता हूं, जिसने दिल्ली विश्वविद्यालय की पुस्तकों को उपलब्ध कराकर मेरा काम आसान किया। वहीं सुरेन्द्र, सुरजीत, पी एन सक्सेना, भरत जी के संघर्षपूर्ण जीवन कुछ कर गुजरने का एहसास दिलाते। सूरज प्रकाश, आलोक का अपनत्व आज भी मेरी स्मृति में है। भाई अजित, अशोक जी के योगदान को भूलाना संभव नहीं, जिन्होंने अंतिम समय में लघु शोध-प्रबंध का प्रूफ देखकर सहयोग किया। प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध यदि अपने अंतिम परिणति को पहुंचा है, तो अनुज महेश्वर प्रिंस की कायिक क्षमता का ही प्रतिफलन है, जो दो वर्ष का सपना अपनी सार्थकता तक पहुंच सका।

भइया-भाभी, मौसा-मौसी आदि का ममत्व एवं प्यार मेरे जीवन को सार्थकता प्रदान करते हैं, इन सभी का मेरे छात्र जीवन में अमूल्य योगदान रहा। छोटी बहने विद्या, कालिन्दी, इंदू, तारा, शीला और बिट्टू की बातें मेरे लिए स्नेहिल अनुभव का एहसास कराती हैं। और छोटे भाई अनिल, छोटू, शिब्बू की चुलबुली आदतें मुझे लेखकीय तनाव से मुक्त कराती हैं। मेरी प्यारी भांजी अर्चना एवं वंदना और भतीजा रोशन की याद आते ही दिल गद्‌गद्‌ हो जाता है। आदरणीय पूरनचंद जी का अपनत्व मुझे हमेशा प्रेरित करता रहा।

और अंत में परम पूज्यनीय माताजी एवं पिताजी को इस अवसर स्मरण कर अपने जीवन को कुछ सार्थक समझता हूं, धन्य पाता हूं। जिन्होंने हमें उच्च शिक्षा की बुनियादी आवश्यताओं की पूर्ति में अनवरत लगे रहे हैं, इसके पीछे ठोस कारण है कि पूरे परिवार का अपराजेय समर एक दिन रंग लाएगी।

यह लघु शोध-प्रबंध मैंने अपनी दादी मां को समर्पित किया है, जिनके आंचल के बीच पल कर बड़ा हुआ, जो आज भी मेरे लिए प्ररेणा स्रोत बनी हुई हैं, जिनकी स्मृतियां हमेशा मुझे शक्ति प्रदान करती हैं.....!

01-01-2003 बृज किशोर गोयल

१६६, साबरमती छात्रावास
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-११००६७

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

भूमिका (i-v)

प्रथम अध्यायः 'उग्र' का रचना संसारः एक सर्वेक्षण (1-40)

- जीवन परिचय
- कविता
- नाटक
- एकांकी
- हास्य-व्यंग्य
- आत्मकथा-संस्मरण-टीका
- पत्र-साहित्य
- कहानी
- उपन्यास
- घासलेटी आंदोलन

द्वितीय अध्यायः यथार्थ की अवधारणा और 'बुधुआ की बेटी' (41-60)

- यथार्थ क्या है
- सामाजिक यथार्थ
- राजनैतिक यथार्थ
- धार्मिक यथार्थ
- आर्थिक यथार्थ

तृतीय अध्यायः 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में चित्रित समाज (61-84)

- भागीदारी से वंचित समाज
- परंपरागत समाज
- आधुनिक समाज
- ईसाई समाज
- हिंदू समाज
- अछूत समाज

चतुर्थ अध्यायः 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास के पात्रों का अध्ययन (85-103)

- मुस्लिम पात्रः दुर्गति के लिए स्वयं जिम्मेदार
- लेखक की दृष्टि में नारी
- धार्मिक प्रवृति के पात्र
- उच्च समाज
- आदर्श व्यक्तित्व का गठन
- दलित जीवन के विविध आयाम

पाचवां अध्यायः 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास का शिल्प-सौंदर्य (104-114)

- कथानक का गठन
- संवाद-योजना
- भाषा-शैली

उपसंहार (115-123)

ग्रंथानुक्रमणिका (124-130)

अध्यायः एक

'उग्र' का रचना संसारः एक सर्वेक्षण

- जीवन परिचय
- कविता
- नाटक
- एकांकी
- हास्य-व्यंग्य
- आत्मकथा-संस्मरण-टीका
- पत्र-साहित्य
- कहानी
- उपन्यास
- घासलेटी आंदोलन

जीवन परिचय

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का जन्म पौष शुक्ल अष्टमी संवत् 1957 (29 दिसंबर, सन् 1900 ई०) को रात्रि आठ बज कर तीस मिनट पर मिर्जापुर जिला के अधीन चुनार के समीप सद्दूपुर गांव में हुआ था। इनके पिता श्री वैद्यनाथ पाण्डेय कौशीय गोत्रीय सरयू पारीय ब्राह्मण थे। इनकी माता का नाम जयकली था। इनके दर्जनों भाई-बहन हुए, परन्तु पैदा लेते ही ईश्वर को प्यारे हो गये। यही वजह है कि 'उग्र' के जन्मते ही जन्म कुण्डली नहीं बनवायी गयी, बल्कि कौड़ियों के मोल बेच दिया गया, जिसे बाद में 'बेचन' नाम से अलंकरण प्राप्त हुआ और आज उनके नाम की सार्थकता भी देखने को मिलती है। 'उग्र' की स्कूली शिक्षा चुनार के चर्च मिशन स्कूल से शुरू हुई, वह भी अपूर्ण रही। जो बाद में काशी नगरी में पूरी हुई। पिता की मृत्यु से 'उग्र' के जीवन में दरिद्रता का अभिशाप पैदा हो गया। बड़े भाई उमाचरण पाण्डेय 'त्रिदण्डी' की गलत आदतों एवं माता और पत्नी की पिटाई से 'उग्र' को बहुत कष्ट पहुंचता रहा। 'उग्र' के तेजस्वी, स्वछंद विचारधारा को जीवन की रस्सा-कस्सी भरी जिंदगी में देखा जा सकता है। अंधेरे बादलों का मंडराना 'उग्र' के कारुणिक जीवन का सत्य बने गया था।

'उग्र' के जीवन भर की त्रासदी एवं संघर्षपूर्ण आख्यान उनके समस्त लेखन में ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में दर्ज है। 'उग्र' के जीवन में परम् पूज्य पांच गुरूजन मिले, जिन्हें कृष्णदत्त पालीवाल से 'उत्साह', काशीपति त्रिपाठी से 'सहृदयता', लाला भगवानदीन से 'दृष्टि', उमा चरण 'त्रिदण्डी' से 'लिखने का शौक' और बाबू विष्णु राव पराड़कर से 'राह' मिला। इस प्रकार 'उग्र' का जीवन सजा-संवरा परन्तु आजीवन शूद्र बने रहे। और हिंदी का सितारा हमेशा हमेशा के लिए २३मार्च १९६७ ई० को डूब गया। परन्तु 'उग्र' के लेखन का उजाला आज भी समाज को रौशनी प्रदान करता हुआ पुकार रहा है कि 'ऐ मानवोचित जीव पृथ्वी की समस्त बुराईयों को दूर करने में अपने आप को समर्पित कर दो-वह भी 'उग्र' की तरह।'

परंपरा को आत्मसात करना आसान है मगर अलग वैचारिक धरातल तैयार करना बड़ा मुश्किल और संघर्षपूर्ण है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' चुनौतियों को गले लगाने वाले लेखक हैं। नए रास्तों के सृजन एवं उसके खतरों से टकराने की पूरी कोशिश जीवन भर चलती रही। करते क्यों नहीं? जिसे जन्म लेते ही बेच दिया गया हो, वह भी कौड़ियों के मोल। जिसके कानों में बचपन में ही 'रण्डी' (वेश्या) शब्द गुंजे हों, जिसने जुआरी, शराबी, चोर-उच्चकों के बीच बचपन गंवाया हो। जिसने गरीबी और तंगी की मार आजीवन झेली हो, जिसने जुआ और शराब के लिए मां और भाभी की पिटाई की चीख-पुकार एवं वेदना का एहसास किया हो। जिसे बड़े भाई की गलत प्रवृतियों से कष्ट पहुंचा हो, जिसने पेट की आग बुझाने के लिए मजबूरी में 'रामलीला' (नौटंकी) में अभिनय किया हो। वही है-तेज मस्तक वाला 'उग्र'। जिसके रग-रग में बेचैनी और चुनौती खड़ी कर देने की उत्कंठ जिज्ञासा है। वह बेचैन लेखक ही 'बेचन' हो सकता है। जिन्होंने अपनी पारखी नजर से जमाने की छद्म व्यवस्था को नए सिरे से जांचने-परखने का काम किया। इनके लेखन को पढ़कर विद्रोही कबीर की याद ताजा हो जाती है।

निराला हमेशा कहते रहे कि ' 'उग्र' की कुख्याति भी साहित्य में एक दिन ख्याति बनकर चमकेगी।' यह कथन निश्चित रूप से 'उग्र' के उपयोगितावादी दूर-दृष्टि की ओर संकेत करता है। 'उग्र' जिस साहित्य की अभिव्यक्ति कर रहे थे, वह जोखिम से खेलने जैसा था। समय के चक्र और जीवनानुभूति ने 'उग्र' को तेजस्वी स्वर से भर दिया था। 'उग्र' के साहित्य सृजन में पत्रकार 'उग्र' का चरित्र ही अधिकांशतः उभरा है, क्योंकि एक पत्रकार आम जन मानस की तमाम् बुराईयों से परदा हटाकर तथ्य को समाज के सामने रख देता है। 'उग्र' ने अपने अधिकांश सृजन में यही किया है। उन्होंने साहित्यकार और पत्रकार दोनों को एक मंच पर ला खड़ा करने की कोशिश की है। 'उग्र' ने साहित्य के प्रबल सामाजिक सरोकारों से ही उत्तरदायित्व-बोध को स्वीकार किया है। और सदियों से चले आ रहे परंपरागत आदर्श लेखन को खुली चुनौती दी है। उन्होंने बड़ी दृढ़ता से कहा कि ''है कोई माई का लाल जो हमारे समाज को ऊपर से नीचे तक देखकर, कलेजे पर हाथ रखकर, सत्य के तेज से मस्तक तानकर इन पुस्तकों (दिल्ली का दलाल, बुधुआ की बेटी, सरकार तुम्हारी आंखों में, कढ़ी में कोयला, जी जी जी, चन्द हसीनों के खुतूत, चॉकलेट आदि) के अकिंचन लेखक से यह कहने का साहस करे कि तुमने जो कुछ लिखा है, समाज में ऐसी घृणित, रोमांचकारी, काजलवादी तस्वीरें नहीं हैं। अगर हों तो सोत्साह सामने आये, मेरे कान

उमेठे और मेरे छोटे मुंह पर थप्पड़ मारे, मेरे होश ठिकाने करे, मैं उसके प्रहारों के चरणों के नीचे हृदय पाँवड़े बिछा डालूंगा.....।"[1] इस कथन में पत्रकार 'उग्र' का व्यक्तित्व झलकता है। जिसके पास अपने सम्पूर्ण लेखन में जीती-जागती तस्वीर है और प्रबल कारुणिक अनुभव का दंश भी। उनके पास समाज को तीसरी आंख से देखने का प्रामाणिक तर्क भी है। एक तरफ यह लेखकीय चुनौती तत्कालीन लेखकों के लिए थी, तो दूसरी तरफ समाज के दलालों के काले मंसूबों को परत-दर-परत खोलकर रख देने की सफल कोशिश। जो रात में आदर्शवाद के सपने देखते हैं और सुबह होते ही सभी कुकर्मों पर परदा डाल, उसे लिपिबद्ध कर देते हैं। जो कभी सच्चाई से टकराने की हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं। परन्तु यह हिम्मत सिर्फ पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' एवं ऋृषभचंद जैन जैसे अति यथार्थवादी लेखकों में ही देखने को मिलती है। इन्हीं कारणों से 'उग्र' के लेखन की उपयोगिता 21 वीं सदी के दहलीज पर खड़ी लेखकीय कलम में महसूस की जा रही है। जिसने दलित, नारी एवं हिन्दू-मुस्लिम विवाद जैसे महत्वपूर्ण रचनात्मक लेखन से सबको स्तब्ध किया है। जिन्होंने देश में पनप रहे संप्रदायवाद का खुलकर बॉयकाट किया और हिंदू-मुस्लिम के बीच एकता को स्थापित करके आपसी प्रेम का बीज बोने का सफल प्रयास किया। उन्होंने अछूतों की समस्याओं को बहुत बारीकी से पहचानने की कोशिश की और उसी के अनुरूप अनेक चरित्रों (मनुष्यानंद जैसे) को गढ़ा। वे महान चरित्रों के द्वारा दलितों (अछूतों) का पुनरूद्धार करवाते हैं। उन्होंने सामंती व्यवस्था में पीस रहे हाशिए के लोगों को चेतनामय बनाया और यौन-शोषण में लिप्त युवाओं की खोखली मानसिकता को उजागर किया। आज ये सभी विचार बहुत महत्वपूर्ण बन गये हैं 'उग्र' इन सारी विसंगतियों से जुड़े समस्त तंत्र एवं हथकण्डों का पर्दाफाश करके आम जनता को सतर्क करते हैं। साथ ही साथ उन्होंने आधी दुनिया (नारी जाति) को सामयिक संदर्भो में रखकर देखने की भरपूर कोशिश की है। इन्होंने पुरूषवादी समाज के काले मन्तव्यों को खोलकर रख दिया और देह की सीमा में बांधने संबंधी विभिन्न कुचक्रों एवं विचारों की मीमांसा भी की।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' हिन्दू-व्यवस्था में सदियों से चले आ रहे बाह्य आडम्बरों, कर्मकाण्डों एवं अंधविश्वासों, सोखा-ओझा, भूत-प्रेत, तंत्र-मंत्र आदि से जुड़ी समस्त कुरीतियों एवं तर्क रहित विचारों का पुरजोर विरोध करते हैं। 'उग्र' ने मूर्खतापूर्ण अंधविश्वासों के दलदल में फंसे समाज को उबारने हेतु प्रेरणा-स्रोत साहित्य लिखा और पूरी तन्मयता के साथ अंधी जनता को रोशनी दिखाने की सफल कोशिश की। उन्होंने सम्पूर्ण भारत की मुक्ति के

छठी कक्षा में ही 'उग्र' गांधी के व्यक्तित्व से आत्मीय रूप से जुड़ चुके थे। यही वजह है कि 'उग्र' का अधिकांश साहित्य गांधीवादी दर्शन से उद्‌बुद्ध है। उन्होंने 'गांधी -जयंती' कविता लिखकर विदेशी सत्ता से मुक्ति के लिए लेखन को हथियार बनाया। भवदेव पाण्डेय ने लिखा है-''राष्ट्रीय मुक्ति के लिए सक्रिय संघर्ष करने वाले 'उग्र' के लिए तो गांधी जी सम्पूर्ण रचना-धर्म थे।''[4] इन्हीं विशेषताओं के कारण 'उग्र' पर गांधीवादी विचारधारा से न उबर पाने का दोषारोपण किया जाता है। 'उग्र' की 'परतंत्र' कविता में गुलाम देश की तस्वीर उभर आयी है। 'उग्र' ने स्वदेशीपन को बचाने के लिए समाज के समस्त क्रांतिकारी रूपों को दिखाने का सफल प्रयास किया है।

'उग्र' के गद्य-काव्य का एक नमूना 'रूपया' निबंध में भी देखने को मिलता है। जिसमें रूपया के बल पर धर्म, ईमान, लोक-परलोक, ईश्वर, प्रेम, दुख-सुख आदि समस्त संसार की प्रक्रियाओं को विभिन्न आयामों में उजागर करने की पूरी कोशिश की गई है। वे लिखते हैं कि-

''विशाल विश्व में यदि कोई ईश्वर हो तो मैं हूं!
धर्म हो तो मैं हूं, प्रेम हो तो मैं हूं!
मैं सत्य हूं मैं शिव हूं, मैं सुन्दर हूं!
मैं सत् हूं, मैं चित् हूं, मैं आनंद हूं!
परलोक मैं हूं, लोक मैं हूं, हर्ष मैं हूं!
शोक मैं, क्षमता मैं हूं, ममता मैं हूं!
मैं रूपया हूं।''[5]

'उग्र' के काव्य-सृजन में लोक-धुनों की भी आवाज सुनायी देती है। भोजपुरी गीतों एवं बिरहा का प्रभाव अनायास नहीं दिखता है बल्कि 'उग्र' की पैदाइश गंवई मिट्टी में हुई, उनके लेखन की सुगंध भोजपुरी क्षेत्र में आज तक महसूस की जाती है। कुछ नमूना देखें, जिसमें अंग्रेजीयत की मानसिकता को दर्शाने का प्रयास किया गया है-

'' गोरवा क लड़िका मसिनियां चलावला
करिखा रेहलिया क मुंह में लगावला
गाई-गोरू देखला त सिटिया बजावला
खांवँ-खावँ करिक लड़िकवा डेरावला
टोपवा के करला गुमान।''[6]

'उग्र' ने लगभग 50 से अधिक कविताओं का सृजन किया है। इनमें अधिकांश आज भी संग्रह की राह देख रही हैं। इनमें 'भारत तिलक', 'आह्वान', 'विजय कहां है?', 'सुख का पता', 'हड़ताल करो', 'श्मशान', 'पवित्र', 'पताका', 'पथिक', 'सावधान', 'भारत चन्द्र ग्रहण', 'दीनबंधु-लेनिन' और 'बापू के चरणों में' आदि कविताएं काफी चर्चित रही हैं। इन सभी रचनाओं में ब्रिटिश उपनिवेश के काले चेहरे का पर्दाफाश कर कड़ी चुनौती देने की उत्कृष्ट कोशिश है। यदि भवदेव पाण्डेय के शब्दों में कहें-''इन कविताओं में साम्राज्यवादी शासन के प्रति बगावत, भारतीयों में देश के लिए कुर्बानी करने की भावना का जागरण, गरीबों और अत्याचार पीड़ितों के प्रति सहानुभूति, स्वतंत्रता-संघर्ष की बागडोर संभालने वाले नेताओं का महिमा गायन, अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर किए जानेवाले जुल्म, राष्ट्रीय अतीत का गौरव गान, शहीद हुए नेताओं के लिए श्रद्धांजलियां और दमन-चक्र के साथ चलने वाले इतिहास जैसे विषयों को तल्ख शैली में अभिव्यक्त किया गया था।''[7]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के काव्य-लेखन में भाव प्रवाहता एवं राष्ट्रीय संवेदना दोनों कूट-कूट कर भरी हैं। उनका काव्य सृजन राष्ट्रीय उत्प्रेरणाओं का अभयदान साबित हुआ। यही वजह है कि 'उग्र' की 'राष्ट्रीय गान' कविता को उत्कृष्ठ लेखन के लिए विशिष्ट पुरस्कार से नवाजा गया। यह कविता कलात्मक मानदंडों की सफल अभिव्यक्ति है। और 'उग्र' को अपने समकालीन समय में महान कवि होने का गौरव मिल गया।

'उग्र' ने काव्यात्मक व्यंग्य-शैली का भी अनुसरण किया है। 'मतवाला' पत्रिका में 'उग्र' की अधिकांश व्यंग्य कविताएं छपीं। उनमें 'मदारी-रत्नाकर-संवाद', 'मुख-मर्दन-उर्फ-चुम्बन', 'अपने मुंह मिया मिट्ठू' आदि कविताएं प्रमुख हैं। इन व्यंग्य कविताओं में समाज में व्याप्त दुराचारों, शासन सत्ता और सामंती व्यवस्था के बीच सांठ-गांठ करके चलाए जा रहे शोषणकारी छद्म कुकृत्यों को बड़ी कलात्मकता से आम जनमानस के सामने ला खड़ा किया गया है। भवदेव पाण्डेय ने लिखा है कि ''व्यंग्य शैली में राजनीतिक विसंगतियों, ब्रिटिश शासन के अत्याचारों, पुरोहितों तथा महाजनी संस्कृति की लूट-खसोट-वृतियों, साहित्य-सेवा के नाम पर की जाने वाली चालाकियों, दुरभि-संधियों तथा धर्म के अधर्मीकृत आचरणों पर तीखा आक्रमण किया जाता था।''[8]

अंत में यह कहना ज्यादा मुनासिब होगा कि पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने सम्पूर्ण लेखन में समझौतावादी प्रवृति को दरकिनार कर देश, समाज, गरीब-मजलूम लोगों के बीच अपनी जगह बनायी है। वहीं शासन सत्ता को ललकारने का आत्म विश्वास पैदा किया और

बहुत कठोर शब्दों में निंदा भी की। साथ ही साथ गांधीवादी व्यक्तित्व को सामने रखकर हाशिए के लोगों के साथ अपनी आत्मिक अभिन्नता को अनुभव कर सके थे। उन्होंने साहित्य के नैतिक उत्तरदायित्व को स्वीकार करके सत्य के तेज से अपना मस्तक ऊंचा कर दिखाया है।

नाटक

ब्रिटिश उपनिवेशवादी सत्ता के विरूद्ध संघर्ष करने वाले दिव्य एवं प्रबल आत्म विश्वासी चरित्र की रचना का प्रतिफलन है-'महात्मा ईसा' नाटक। इस नाटक में आयरलैंड के महान सत्याग्रही मैकस्विनी की छवि को महात्मा गांधी के रूप में देखा गया है। जो गोरे शासन के खिलाफ प्रदर्शन करते हुए, मृत्यु अवसान को प्राप्त हुए। यह नाट्य कृति भारतीयों की राष्ट्रीय चेतना को भी प्रतिबिंबित करती है। 'उग्र' ने 'महात्मा ईसा' नाटक से ही साहित्यिक जीवन की शुरूआत की और उपनिवेशवादी सत्ता के काले इतिहास को चुनौती दी। यद्यपि 'उग्र' ने दर्जन भर नाटकों का सृजन किया। उनमें अधिकांश नाटक बहुत ही चर्चित रहे। 'महात्मा ईसा' की नाट्य शैली से प्रभावित होकर प्रेमचंद को सन् 1922 में ही लिखना पड़ा था कि ''पहला एक्ट समाप्त होते-होते तो मैं उसका भक्त हो गया। भाव, भाषा, चरित्र-चित्रण, कथानक सभी ने मुझे मुग्ध कर दिया।...ऐसे मौलिक और गहन विषय पर नाटक लिखकर 'उग्र' जी ने हिंदी का मस्तक ऊंचा कर दिया है।''[9]

यह बात सच है कि पहली बार 'उग्र' ने पश्चिमी सभ्यता से जुड़ी घटनाओं के द्वारा हिंदी नाट्य साहित्य को प्रेरित किया और विभिन्न अतीत के चरित्रों को इतिहास के पन्नों से बाहर निकालकर साहित्य और जनमानस से नाता जोड़ने का दृढ़ संकल्प किया। इस नाट्य-लेखन पर डॉ रत्नाकर पाण्डे की टिप्पणी बहुत ही सारगर्भित लगती है-''इस नाटक में 'ईसा' के चरित्र को केवल ईसाइयों के आदि पुरूष के रूप में नहीं चित्रित किया गया, अपितु भारतीय संस्कृति और गुरूकुल की परंपरा में उन्हें प्रतिष्ठित कर 'उग्र' ने ईसा के धार्मिक सिद्धांतों को सर्वजन-सुलभ और सार्वभौम बनाया।''[10]

यद्यपि 'उग्र' ने प्रसिद्ध नाटकों के अनेक आस्वाद चखे हैं। परन्तु 'चुम्बन' नाटक की लेखनी ने जन समस्याओं के प्रति लेखकों एवं समाज के उत्तरदायित्व लिए अनेक स्वांग रचने वाले, दंभ रखने वाले पुरूषों और स्त्रियों की वेदनाओं के विविध आयामों की तरफ ध्यान खींचा था। पुरूषवादी मानसिकता ने स्त्री अस्मिता के सवालों पर कभी गौर नहीं किया बल्कि

अत्याचारी चरित्रों का हमेशा परिचय दिया। उन्हीं स्वच्छंद विचारों के धरातल पर खड़े होकर 'उग्र' ने नारी जाति को आवाज दी कि- 'ऐ आधी दुनिया स्वयं स्वावलंबी बनों और पुरूष जाति के शोषणवादी पंजों को उखाड़ कर समाज में अच्छी मिसाल कायम करो और साथ ही यह सोचने के लिए मजबूर कर दो कि पुरूष जाति का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। नारी के समानान्तर भागीदारी के बिना दुनिया का अस्तित्व अधूरा है।' आज यही विमर्श 21 वीं सदी के चौखट पर खड़े होकर उन्मुक्त भाव से सारी दुनिया के सामने अपना पक्ष बड़ी सच्चाई, और आत्मविश्वास के साथ रखने को बेताब है। इस कथन के साथ कि 'सदियों से पुरूष मानसिकता ने नारी जाति को समाज के प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्यों में सहभागी बनाने से वंचित करता रहा है। मगर आज के दौर में यह शोषण संभव नहीं है।

'उग्र' ने 'डिक्टेटर' नाटक सन् 1937 में लिखा। इस नाटक से 'उग्र' को इतनी प्रसिद्धि मिली कि उन्हें विश्वस्तरीय भविष्यवेत्ता के रूप में देखा जाने लगा। नाट्य कृति में 'उग्र' को 'दिन दुना रात चौगुना' की तरह अभिमत मिलने लगा। इस दौरान तक 'उग्र' को न तो नाट्य-रंगमंच की भारतीय एवं पाश्चात्य तकनीक और गहराई का ही पता था और न ही वे प्रभावकारी नाटककारों से रू-ब-रू हो पाये थे। परन्तु 'उग्र' के 'डिक्टेटर' नाटक ने पूर्ववर्ती नाटकों के सभी प्रतिमानों को धवस्त कर दिया। इसमें साम्यवाद की वैचारिक लड़ाई लड़ने वाले प्रश्नों को पूंजीवादी सत्ता के खिलाफ आक्रामक स्वरों में 'फासीस्ट ब्राण्डवाला' के रूप में चुनौती दी गयी थी।

'उग्र' ने 'डिक्टेटर' नाटक की भूमिका में क्रांतिकारी कबीर की प्रसिद्ध पंक्तियों को कुछ इस तरह से लिखा है-

''का मांगों कुछ थिर न रहाई.....
हाथ झारिके चले जुआरी।''[11]

इन दोहों के माध्यम से 'उग्र' यह बतलाना चाहते हैं कि पूंजीवादी सत्ता के अब दिन लद गये हैं, उन्हें जुआरी की तरह सब कुछ हार कर वापस अपने घर को जाना है। 'डिक्टेटर' नाटक की विशिष्टता इस बात से लगायी जा सकती है कि 'इस नाटक में द्वितीय विश्वयुद्ध होने से पहले ही युद्ध के हार जीत की अंतर्राष्ट्रीय परिकल्पना की गई। यह भी कल्पना की गई है कि द्वितीय विश्व युद्ध सन् 1948 तक चलेगा। जो बाद में चलकर सम्पूर्ण विश्व इस विभिषिका के सच का गवाह बना। 'डिक्टेटर' नाटक के माध्यम से यूरोपीय बाजार

के सार्वत्रिक रूपों, डालर एवं नये विश्व के अपराधी-वर्ग के घिनौने चेहरे को बड़ी कुशलता से चित्रित किया गया है। 'उग्र' ने लिखा है कि 'ईश्वर महान है लेकिन डालर सर्वशक्तिमान है।' इस स्लोगन ने विश्वस्तरीय बाजारवादी वर्चस्व में 'डालर' के प्रभाव क्षेत्र को उजागर कर दिया है।

'उग्र' कृत 'गंगा का बेटा' नाटक शास्त्रीय एवं पौराणिक तथ्यों पर आधारित है। इसमें पुराण-कथात्मक चरित्रों को सम्राट, देवर्षि, मंत्री और ब्राह्मण आदि पात्रों के द्वारा शासन सत्ता और आम जनता के बीच पनप रहे द्वन्द्व को दिखाने का साहस किया गया है। इस नाटक का सम्पूर्ण परिवेश या संवाद तार्किक एवं बौद्धिक विचारों पर केंन्द्रित है जिसमें 'युद्ध के विरूद्ध नई मानवता की खोज की गई है।'

'उग्र' ने भारत के अशान्त समय में पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों के द्वारा वर्तमान समस्याओं का समाधान खोजने की विविध कोशिश की। और यह राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक महत्व की याद दिलाकर परतंत्र भारत की मुक्ति के लिए स्वतंत्र चिंतन के द्वारा अंतिम संघर्ष का बिगुल फूंकने की पौराणिक कोशिश है।

'उग्र' ने 'अवारा' नाटक लिखा। यह नाटक अपने प्रिय मित्र श्रीहृदय की याद में रचा था। प्रतिभा सम्पन्न कवि एवं समाजसेवी के रूप में चर्चित 'हृदयजी' की प्रेरणा से निर्मित 'आवारा' कृति को 'अद्‌भूत' आधुनिक सामाजिक नाटकों में गिना जाता है। 'स्वच्छ' हृदय को पहचानने वाले 'उग्र' ने 'आवारा' नाटक की भूमिका में लिखा है कि ''हृदय के मरने के बाद रोना तो दूर मुझे हंसना भी नहीं आता, क्योंकि जब किसी के मरने जीने में अपना कोई वश नहीं तब रोने-हंसने से क्या फायदा? पत्थर की दीवारों की तरह जड़ मौन होकर ही शायद यह सांसारिक दुःखमय नाटक अधिक उपेक्षा से देखा जा सकता है''[12]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपनी सम्पूर्ण कृतियों की भूमिका में रचना के उद्देश्य और सृजनात्मक ईमानदारी को व्यक्त करना विश्वविख्यात नाटककार जार्ज बर्नार्ड शॉ के लेखन से सीखा था। शॉ अपनी नाट्य-लेखनी की भूमिका में ही अपने विचारों को स्पष्ट कर देते थे। 'उग्र' के नाटकों को आद्योपांत पढ़ने के बाद पाठक तथाकथित व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करने लगता है। इसके बावजूद उन्होंने 'आवारा' नाटक पर एक आलोचक की भूमिका में बहुत गंभीर टिप्पणी की है। वे लिखते हैं-''नाटक को आदि, मध्य और अंत में पहले नाटक होना चाहिए, फिर कुछ और''[13]

'उग्र' द्वारा रचित ऐतिहासिक नाटकों में 'अन्नदाता माधव महाराज महान्' को गिनाया जा सकता है। इसमें ग्वालियर के राजघराने की विविध व्यवस्था को यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है। 'अन्नदाता' शब्द गरीब, असहाय और ईमानदार जनता की मौलिक अभिव्यक्ति थी। जिसमें ग्वालियर राजाओं की परंपरा और नीतियां माकूल उत्तर देती हैं। इस नाटक में माधव, नाना साहब और रामजी ये तीनों ऐतिहासिक चरित्र हैं। बाकी सभी काल्पनिक दुनिया के सृजनहार के रूप में जगह पाए हैं। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का बहुचर्चित एवं गंभीर नाट्य-कृतियों में 'माधव महाराज महान' का स्मरण किया जाता है। 'उग्र' ने भारत में देशी शासकों के मिटते इतिहास को यथा-तथ्य साहित्य में दर्ज करने की नायाब कोशिश की है। देश की गरीब जनता राजाओं को भाग्यविधाता एवं अन्नदाता के रूप में देखा करती थी। इन्हीं विचारों को ध्यान में रखकर डा० रत्नाकर पाण्डेय ने लिखा है कि ''वस्तुतः यह नाटक राजा के सुदृढ़ संबंधों का ऐसा दस्तावेज है जिससे सारे भारत के विघटित राज्यों में राजकीय एक सूत्रता का समन्वय स्थापित होता है।''[14]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का अंतिम और बहुप्रतिक्षित नाटक 'नई पीढ़ी' है, जो सन 1947 के भारत-पाकिस्तान विभाजन की त्रासदी के बाद लिखा गया। यह नाटक आज तक अप्राप्त है, परन्तु नाटकीय टिप्पणी से ऐसा लगता है कि 'नई पीढ़ी' नाटक राजनैतिक उहापोह से उपजा हुआ संदर्भ-ग्रंथ है, जिसमें नये उमंगों, उत्साहों में गोता लगाने को आतुर नई जनरेशन की आने वाली आवाज एवं सपने को संजोया गया है, परन्तु भारत-पाकिस्तान की त्रासदी से उठे द्वेष भावनाओं को दबाकर ही भारत का प्रत्येक आदमी नई सुबह होते ही, आजाद भारत का सपना सूर्य की पहली किरण में देखना चाहता था। इन्हीं वैचारिक धरातल की नई उपलब्धि 'नई पीढ़ी' नाटक है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' को नाटककारों की श्रेणी में पहचान भले न मिली हो परन्तु भारतेंदु हरिश्चंद्र से होकर जयशंकर प्रसाद और मोहन राकेश के सृजन तक जो परंपरागत ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, एवं राष्ट्रीय चेतना से उद्‌बोधित नाटक लिखे गये, उन सभी से अलग पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपनी पहचान बनाई है। 'उग्र' का अधिकांश नाटक जार्ज बर्नार्ड शॉ और शेक्सपीयर की श्रेणी में स्थान पाने का हकदार है। जिसने त्रासदीपूर्ण समाज की प्रत्येक गाथा को यथार्थ-रूप में सफल चित्रित किया है।

एकांकी-प्रहसन

ब्रिटिश सत्ता की कालगुजारियों को दर्शाने के लिए पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने छद्म नाम से एकांकी-प्रहसन लिखना शुरू किया। जिनका 'लाल क्रांति के पंजे में' पहला एकांकी था, जो 'स्वदेश प्रेस' (गोरखपुर) के 'विजया अंक' के रूप में सन् 1924 ई० को प्रकाशित हुआ था। इस एकांकी ने उपनिवेशवादी शासन की जड़े हिला दी। सरकार को मजबूर होकर 'स्वदेश' प्रेस को जब्त करना पड़ा और 'उग्र' को काल कोठरी के पीछे आबद्ध कर दिया गया।

'उग्र' के सभी एकांकी-प्रहसन का मूल उद्देश्य किसी न किसी समस्या से उपजा हुआ था। उन्होंने 'अफ़जल बहा', 'सीताहरण' आदि एकांकी लिखा जो 'इन्द्रधनुष' के सात रंगों में शब्दबद्ध किया गया था। 'सीताहरण' गीति-नाट्य के रूप में जाना जाता है। 'उग्र' का जीवन घुमक्कड़ों जैसा बन गया था। वे इधर-उधर शौक से नहीं घुमते थे, बल्कि शासन की आंखों में धूल झोंकने के लिए। उनके प्रसिद्ध मित्रों में से एक राजेन्द्र लाहिड़ी थे, जिनको 'काकोरी काण्ड' में भाग लेने के जुर्म में सन् 1925 ई० में फाँसी दे दी गयी थी। इन घटनाओं ने निश्चित तौर से 'उग्र' को गोरी सरकार के खिलाफ बोलने-लिखने का अदम्य साहस पैदा कर दिया।

'उग्र' का 'प्रहसन' लिखना सोद्देश्य ही रहा है। इस कार्य को अंजाम देने में 'मतवाला' पत्रिका की अहम् भूमिका रही है। उन्होंने 'चार बेचारे' प्रहसन को 'ढ़िढ़ोरानंद स्वामी' के छद्म नाम से लिखा था। 'उग्र' के समस्त 'एकांकी-प्रहसन' देश की राष्ट्रीय चेतना के साथ जोड़कर देखना उचित है। उन्होंने 'उजबक', 'खोज' आदि प्रहसन लिखे। ये एकांकी-प्रहसन 'अंधेर-नगरी' की कलात्मक परंपरा में आते हैं। यह बात स्पष्टतः कही जा सकती है कि 'उग्र' का एकांकी-प्रहसन लिखना तत्कालीन व्यवस्था के पंगुपन होने का प्रतीक है। क्योंकि व्यंग्य समाज में आयी विसंगतियों को लेकर लिखा जाता है सांस्कृतिक मूल्यों में आये ह्रास को लेखक लिपिबद्ध करता है, जिससे समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन हो सके। डॉ० रत्नाकर पाण्डेय नें 'उग्र' के एकांकी-प्रहसन सृजन के उद्देश्यों को बिना लाग-लपेट के खोल दिया है। वे लिखते हैं कि 'उग्र' ने अधिकतर प्रहसन ही लिखे हैं। प्रहसन भी एकांकी का एक ऐसा 'हास्यव्यंग्य प्रधान' स्वरूप है जिसका उद्देश्य समाज की जड़ता, रूढ़ि कमजोरी आदि त्रुटि की योजना करके अथवा पात्र के किसी चारित्रिक दुर्गुण को प्रकाश में लाकर उसे उपहासास्पद

बना देते हैं। अधिकतर सामाजिक कुरीतियों का पर्दाफाश करना प्रहसन लिखने वाले साहित्यकार का मूल उद्देश्य होता है। हंसने और हंसाने के लिये नहीं, अपितु व्यंग्य के साध य से बिगड़े को सुधारने के निमित्ति प्रहसन लिखे जाते हैं।''[15]

इस प्रकार 'उग्र' ने एकांकी-प्रहसन लिखकर मनुष्य और समाज को सुधारने की आत्मीय अभिव्यक्ति की। 'चार बेचारे' एकांकी का तीसरा अंक 'बेचारा सुधारक' प्रसंग इसका जीता-जागता उदाहरण है। जिसमें समाज के पुरूष स्वयं वेश्यालयों का चक्कर लगाते हैं, किंतु अपनी पत्नी के ऊपर पराये पुरूष से यौन-सुख प्राप्त करने का दोषारोपण करते हैं। इन सामाजिक बुराईयों को सामने रखकर 'उग्र' ने कलम चलाने का जोखिम उठाया था। उन्होंने समाज के घृणित व्यक्तियों की राक्षसी प्रवृतियों पर कुठाराघात कर स्वच्छंद समाज के निर्माण की अनोखी कल्पना आजीवन लेखन में महसूस की। यही है-पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का रचना संसार जिसमें सम्पूर्ण भारत अपने कुरूप चेहरे को स्पष्ट रूप से देख सकता है। इनके एकांकी-प्रहसन की महत्ता को स्वीकारते हुए शिवपूजन सहाय ने लिखा है कि ''भैया 'उग्र' की लेखनी में कितनी जोश-ए-जवानी है, कितनी चुलबुलाहट है, कितनी लचक और धड़क है, यह वही परख सकेगा, जो उनकी जानदार शैलियों की बारीकियों और खूबियों के मर्म तक पैठकर कोई दिल को गुदगुदाने वाली चीज टटोलेगा। ऐसी दिल की सफाई, ऐसी पक्की धुन, ऐसी मौज की लहर बहुत कम ही हिंदी लेखकों में देखने को मिलती है।''[16]

हास्य-व्यंग्य लेखन

हास्य-व्यंग्य लेखन का अपने तत्कालीन परिवेश से गहरा ताल्लुक होता है क्योंकि साहित्य का सामयिक हथियार हास्य-व्यंग्य लेखन में छिपा होता है। इस क्षेत्र में सबसे अधिक प्रभावकारी लेखन भारतेंन्दु-युग में हुआ। बाद के दिनों में साहित्यिक क्षेत्र में हास्य-व्यंग्य लेखन का अवसान-सा हो गया था। किंतु पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' हास्य-व्यंग्य शैली को अपनी दृष्टि के दायरे में लाये और अपने कुशल एवं परिपक्व लेखन से पुनः जीवित करने का उत्तरदायित्व निभाया। जब भी हास्य-व्यंग्य लेखन का नाम लबों पे आता है 'भारत-दुर्दशा' एवं 'अंधेर नगरी' जैसे लोकप्रिय प्रहसन हमारे सामने होते हैं जिसको याद करके मन गुदगुदाने लगता है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के व्यंग्य लेखन की भावभूमि प्रमुख रूप से देशप्रेम, विद्रोह, समाज में घर कर गई विसंगतियों, अंग्रेजों के काले कारनामों जैसी विषय-वस्तु पर केन्द्रित

होती थी। 'उग्र' जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्मतर समस्याओं पर व्यंग्य करने में माहिर थे। वे 'अष्टचक्र' के नाम से व्यंग्य लिखते रहे। 'उटपटांग' शीर्षक के अंतर्गत दैनिक 'आज' अखबार में व्यंग्य लेखन में बहुत ही मशहूर हो गये थे। इसके अलावा 'स्वदेश' में हास्य-व्यंग्य का नमूना देखने को मिलता है। 'उग्र' जब तक 'मतवाला' से जुड़े रहे, उनके ऊपर हास्य-व्यंग्य का हमेशा परवान चढ़ा रहता था। इसके अलावा 'वीणा' 'उग्र', 'स्वराज्य', 'विक्रम', 'हिंदी मंच' आदि पत्र-पत्रिकाओं में व्यंग्य लेखन विरल गति से जारी रहा। उनके हास्य-व्यंग्य ''सब में चुभने वाली, तिलमिलाने वाली और आंख खोलने वाली शैली थी। उन्होंने ऐसे व्यंग्य-बाण छोड़े, जो कलेजे पार होकर ही रहते थे।''[17]

इस प्रकार पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने हास्य-व्यंग्य लेखन को प्रभावी बनाकर हिंदी साहित्य जगत में अपनी अलग पहचान बनाने की कोशिश की। इनके व्यंग्य लेखन में सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक सभी तरह की परिवर्तन शील चेतना दिखाई पड़ती है। इसी परंपरा को हरिशंकर परसाईं ने आगे जीवित रखा है।

आत्मकथा-संस्मरण-टीका

जब सन् 1776 ई० में पहली बार जर्मनी के प्रसिद्ध आलोचक 'हर्डर' ने 'आत्मकथा' का प्रयोग किया था, तो स्वयं उसे विश्वास नहीं हुआ कि यह विधा विश्व रूप अख्तियार करेगी। और यही 21 वीं सदी में साहित्यकारों के बीच में चर्चा का विषय बनेगा।

साहित्य के क्षेत्र में 'आत्मकथा' एक ऐसी विधा है, जिसे हर हाल में वास्तविक जीवन के अधीन रहना होता है। वह जीवन के विविध उतार-चढ़ाव की गाथा होती है। अर्थात् जन्म और मृत्यु के दो छोरों के बीच भोगे गए सत्य का नाम ही 'आत्मकथा' है। 'आत्मकथा' की व्यापकता को ध्यान में रखकर डॉ० रत्नाकर पाण्डेय ने लिखा है कि ''धूल के एक सामान्य कण से लेकर इस विराट ब्रह्माण्ड के नियंता तक कोई भी विषय जिनका साक्षात्कार उसने किया हो, अथवा जीवन के घात-प्रतिघात में जिन्होंने उसे किसी रूप में प्रभावित किया हो, उसकी आत्मकथा में समाविष्ट हो सकते हैं।''[18]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के जीवन की त्रासदी को 'अपनी खबर' के 'दिग्दर्शन' की प्रारंभिक पंक्तियों में देखा जा सकता है। वे लिखते हैं-''मैंने क्या-क्या नहीं किया? किस-किस दर की ठोकरें नहीं खाईं? किस-किसके आगे मस्तक नहीं झुकाया? मेरे राम! आपको न पहचानने के सबब 'जब जनमि-जनमि जग, दुःख दसहू दिसि पायो''[19]

'उग्र' ने 'अपनी खबर' में जीवन के प्रत्येक यथार्थ को ज्यों का त्यों लिख देने की सफल कोशिश की है। वे जीवन के नग्न प्रसंगों को कहने में जरा भी संकोच नहीं करते। उनमे समाज से मिली ठोकरें, ब्राह्मणवादी व्यवस्था में जीने के कटु अनुभव, सामाजिक, आर्थिक रूप से उपेक्षित किए गये काले संस्मरण को बहुत ही ओजस्वी स्वर में लिखने का नायाब साहस है। उन्होंने लिखा है कि ''....आज भी, मैं निःसंकोच शुद्र हूं और ब्राह्मणों के घर में पैदा होने के सबब साधारण नहीं असाधारण शूद्र हूं।''[20] यही वजह है कि 'उग्र' स्वयं एक ब्राह्मण होकर भी बड़ी ईमानदारी से ब्राह्मणवादी व्यवस्था के मंसूबों का घोर प्रत्याख्यान कर पाये थे। उन्होंने गरीबी, लाचारी, कष्ट और उपेक्षित जीवन की मार ने शूद्र के सामाजिक, आर्थिक, दुख को स्पष्ट रूप से पहचान लिया था। वे हाशिए के लोगों से अपनी आत्मीय अभिन्नता को अलग नहीं कर सके थे। कारण उन्होंने जन्म से लेकर मृत्यु शैय्या तक की यात्रा में सिर्फ वंचित होने का दंश झेला था।

'आत्मकथा' में लेखक अपने व्यक्तिगत जीवन के भोगे हुए क्षण को सार्वभौमिक साहित्य के रूप में समर्पित कर देता है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने जीवन के सर्वसामान्य परिस्थितियों (दुःख-सुख, राग-बिराग, प्रेम-वियोग, घात-प्रतिघात) के अनकहे पहलू को लिपिबद्ध किया है। 'उग्र' ने समाज की भावनाओं को संजोकर स्मृति में रखे गये क्रमिक घटनाओं को व्यक्त करने में नहीं सफल हो पाये हैं तभी भवदेव पाण्डेय को लिखना पड़ा कि '' 'उग्र' की आत्मकथा-अपनी खबर कहीं-कहीं 'परकथा' यानी जीवन-साहित्य जैसी हो गई है।''[21]

'उग्र' अपने जीवन के शुरूआती बीस-बाईस वर्षो को 'अपनी खबर' कथा में लिख डाली है। उनके जीवन का अधिकांश हिस्सा आत्मकथा की परिधि से बाहर है। यही सही है कि 'उग्र' अपने जीये हुए सच को व्यक्त कर रहे थे, तब एक-एक करके बुरे-ही-बुरे दिन देखने को मिले थे। उनको अपने गांव सद्दपुर और बनारस की जिंदगी में कोई खास अंतर नहीं देखने को मिला, बल्कि उन्हें बनारस का जीवन और अधिक दुःखदायी महसूस हुआ था। वे लिखते हैं कि ''गुणहीन, गरीब, गर्हित चरित्र-लेकिन साल दो साल रहकर जब काशी के कलियुगी रंग देखे तब दुखदायी होने पर भी चरित्रहीनता में मेरा बड़ा भाई मन के मुकाबिले में माशा-मात्र मालूम पड़ा।''[22]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' को हमेशा लेखन को लेकर भय रहता था। मगर भय के वातावरण में भी अपने जीवनानुभव से समाज को एक ही दृष्टि से देखते रहे। वे समाज की

सारी बुराईयों एवं अच्छाइयों दोनों की 'अंतर्वस्तु के सत्य बोध' को बिना लाग-लपेट के व्यक्त करते रहे विश्व प्रसिद्ध विद्वान आर्डार्नो की तरह उनकी स्वीकारोक्ति है कि ''स्वांत सुखाय मैं वहीं काम करता रहा जो जानता हूं करना आग लगाना, कूड़ा जलाना।''[23] यह आग घर को जलाने के रूप में नहीं स्वीकार की गई है, बल्कि उपेक्षित समाज को चेतनामय करने, उसमें संघर्ष करने की इच्छा शक्ति पैदा करने, स्वदेशी विचारों में घुस आयी ताण्डव लीलाओं (अछूत समस्या, वेश्या समस्या आदि) के प्रति आम जनता को लेखनी के माध्यम से सतर्क करना था और 'कूड़ा' समाज की पैदाइश है, जिसको हिंदू समाज ने बना रखा है। और उसको व्यक्त करना आदर्शवादी समाज में जायज नहीं रहा है। उन्होंने लिखा है कि ''लिख'' तो डालू, लेकिन जीवित महाशयों की बिरादरी-अंध-भक्त बिरादरी का बड़ा भय है।''[24]

जिस व्यक्ति ने रोटी और कपड़ा जैसी प्राथमिक जरूरतों के लिए जीवनभर संघर्ष किया हो, जिसके जिस्म का छोटा से छोटा हिस्सा ''मौत को भी...नापसंद है। लेकिन अब, इस उम्र में तो ऐसा लगता है यह नाम (बेचन) नहीं, तिलस्मी गंडा है, जिसके आगे काल का हथकंडा भी नहीं चल पा रहा है।''[25] उसी महापंडित ने लिखा है कि ''भोजन और कपड़े के लिए पागल बना मैं यत्र-तत्र-सर्वत्र झक मारता फिरा, प्राणों से भी अधिक प्रिय आत्मसम्मान त्यागकर खलों के सामने मैंने खाली पेट खोल-खोल कर दिखलाया।''[26] फिर भी किसी का दिल नहीं पसीजा।

समाज में साहित्य के वर्चस्ववादी सत्ता और परिस्थितियों के कई पक्ष होते है। उससे साहित्य व्यापक सामाजिक ढ़ांचे से विभिन्न रूपों में जुड़ा होता है। साहित्य हमेशा से सामाजिक क्रियाकलापों के आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और वैचारिक धरातल के व्यावहारिक चरित्रों से संचालित होता है और प्रभावित भी होता रहता है। साथ ही साहित्य समाज के सभी पहलूओं को प्रभावित भी करता रहा है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने सच्चे रचनाकार के रूप में साहित्य से समाज को प्रभावित भी किया है और समाज की प्रत्येक गतिविधियों अंतरबोध से अपने व्यक्तित्व में परिवर्तन भी किया है। और साथ ही साथ अनुभूतिक संरचनाओं को बड़ी कुशलता से एहसास भी किया है। यही वजह है कि प्रसिद्ध लेखकों की सामाजिक उद्‌बोध प्रणाली का विश्लेषण करते हुए डी० डी० कौसाम्बी ने लिखा है कि ''एक महान लेखक अपनी रचना में स्वयं को सीधे-सीधे प्रकट नहीं करता। वह अपने अनुभवों के साथ-साथ दूसरे के अनुभवों को भी व्यक्त करता है। लेकिन इस अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में वह जिन बिंबों और मुहावरों का प्रयोग करता है उनमें उसके वर्ग और सामाजिक

संरचना की छाप मौजूद रहतीं है।''[27]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की आत्मकथा 'अपनी खबर' में जीवन को अधूरे पन्ने के रूप में ही याद किया जाता है। इनके चिंतन के धरातल में बहुत वैभिन्य है, इन्हीं कारणों से डॉ रत्नाकर पाण्डेय ने 'उग्र' की आत्मकथा के संदर्भ में 'गालिब' को उद्घृत किया -

'' जी ढूँढ़ता है फिर वही फुर्सत, कि रात दिन,
बैठे रहे तसव्वुरे जान किए हुए।''[28]

'अपनी खबर' का 'दिग्दर्शन' अंक जीवन की विपदाओं एवं अभावों में प्रबल आवेग से चलते रहने का संदेश है, वहीं 'प्रवेश' भाग में लेखन के उत्तरदायित्व बोध के साथ भय भी रहा। इसके बावजूद 'उग्र' ने तथाकथित उच्च समाज के द्वारा निर्मित लक्ष्मण रेखा के पार जाकर कलम चलाने का साहस किया है। उन्होंनें व्यक्तिगत स्वतंत्रता के भीतर किए अहं का बंधन नहीं स्वीकारा है। जिसकी यह स्वीकारोक्ति कि-''जन्मते ही मुझे बेच दिया जाये। सो, जन्मते ही मुझे यारों ने बेच डाला। और किस कीमत पर? महज टके पर एक! उसका भी गुड़ मंगाकर मेरी मां ने खा लिया था।''[29] ऐसे बेसहारा की अपनी आत्मगाथा कैसी हो सकती है? हम सहज ही समझ सकते हैं, जो 'शानदार भिखारी' हो, क्योंकि ''भिखारी सड़क पर कपड़े फैला या गलियों में हाथ पसारकर भीख मांगता है, लेकिन हमें गरीब और ब्राह्मण जानकर जाने लोग हमारे घर भीख पहुंचा जाते थे।''[30]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' को जन्मना अछूत बना दिया गया। उन्होंने स्वयं ब्रह्मराक्षस का दंश झेला, जो यह कहता हो कि ''यदि मैं शिकायत करूं कि हाय रे, मैं सारे जीवन शूद्र का शूद्र ही रहा।''[31] 'उग्र' को हाशिए के जीवन की संवेदनाओं ने इस कदर प्रभावित किया है कि यह कहने में जरा-सा संकोच नहीं होता-''आज भी जब मैं खानाबदोशों, बंजारों, जिप्सियों की गंदगी, जवानी, जादू और मूर्खता से भरा गिरोह देखता हूं तब मेरा मन करता है कि ललकार उन्हीं में लीन हो जाऊं, विलीन।''[32]

'अपनी खबर' में 'चुनार' शीर्षक में राम राज्य की पवित्र सरयु नदी एवं स्वयं के जन्म स्थान चुनार की प्रसिद्ध गंगा में आत्मिक समन्वय किया है। उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि गंगा के पवित्र तट (काशी) पर भी गंदगी का अंबार लगा हुआ है। ऐसे में गंगा मोक्ष अवतरणी कैसे बन सकती है? इससे अधिक पवित्र तीर्थ अयोध्या की नगरी है, जहां पर सरयु जैसी नदी का न्यायप्रिय इतिहास है। मगर पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' अयोध्या

से अपनी जन्म स्थली चुनार को कम पवित्र नहीं मानते हैं। जो श्रद्धा अयोध्या के प्रति है, उससे भी अधिक चुनार के प्रति। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'अपनी खबर' का अधिकांश हिस्सा उन लोगों के लिए समर्पित किया है, जिसके सानिध्य में 'उग्र' को उत्साह, सहृदयता, दृष्टि, लिखने का शौक और जीवन को चलाने संबंधी राह मिली। उन सभी महान् व्यक्तित्वों को 'उग्र' 'अपनी खबर' के शीर्षक के रूप में जोड़कर अमरत्व के शब्द गढ़े हैं।

कबीरदास ने लिखा है कि 'जो देखै सो कहै नहिं, कहै सो देखै नाहिं'। मगर पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' इस तरह के प्रतिवादों से अलग महत्व रखते हैं, क्योंकि उन्होंने साहित्य का विषय-वस्तु उन्हीं कारकों को बनाया, वहीं लिखा जो देखा था। उन्हें कल्पना के सृजनात्मक साहित्य से नफरत सा हो गया था।

अंत में यह कहना सटीक होगा कि 'पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' अपनी व्यक्तिगत कहानी के जरिए अपने समय और समाज के विविध दुःखों एवं संघर्षों की गाथा को 'अपनी खबर' में समेटने की उत्कृष्ट कोशिश है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' द्वारा रचित 'गालिब-उग्र' नामक टीका गालिब की गजलों पर सारगर्भित टिप्पणी है। इसका कलेवर रंगीन पन्नों से सजा-संवरा है। और इसकी व्याख्यात्मक शैली बहुत ही विलक्षण है। 'उग्र' के जीवन में 'दीवान-ए-गालिब' की प्रतियां 'मतवाला' (कलकत्ता) के सुरक्षित संग्रहों में देखने को मिली थीं। 'उग्र' ने महादेव प्रसाद सेठ के मार्गदर्शन में गालिब के फारसी संग्रहों को आत्मसात किया था। और उसे अपने बचपन के मित्र पं० कमलापति त्रिपाठी को समर्पित किया। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर आलोचक राम विलास शर्मा ने लिखा है कि ''निराला की तरह 'उग्र' ने महादेव प्रसाद सेठ से गालिब प्रेम की दीक्षा ली थी।''[33]

गालिब की पंक्तियों को 'उग्र' ने कुछ इस प्रकार गढ़े थे-

''तेरे वादे पर जिए हम, तो ये जान झूठ जाना
कि खुशी से मर न जाते अगर ऐतबार होता।''[34]

यह बात सच है कि आज संसार अविश्वास, शोषण और भ्रष्ट मिजाजी में जी रहा है। अंधी मानवता अज्ञानरूपी विश्व को कैसे भेद पाएगी, इसे 'उग्र' वखूबी समझते थे। 'उग्र' 'दिवान-ए-गालिब' के हिंदी प्रतिरूप को पढ़ते वक्त उपेक्षित समाज की अनुभूति का एहसास किया था। 'उग्र' गालिब की टीका लिखते वक्त मुहम्मद जौक जैसे शायरों के विचारों से

संचालित होते रहे। मुहम्मद जौक हमेशा कहा करते थे कि ''बुद्धि से हम जान जाएंगे किन्तु जब कुछ ज्ञान हुआ तो पता लगा कि कुछ भी नहीं जान सके।''[35] मगर 'उग्र' द्वारा टीका के अंतिम आत्मबोध में यह कहना कि 'प्राचीन से आधुनिक काल तक करोड़ो आदमियों ने ईश्वर को जाना समझा होगा, परन्तु सभी में ईश्वर का नूर नहीं बन सका।' हांलाकि सभी ने ईश्वर के आगे अपने को अतिमानव घोषित करने की बजाय सामान्य सेवक का रूप स्वीकार किया है।

आखिर 'दीवान-ए-गालिब' की टीका लिखने के पीछे 'उग्र' क्यों आकर्षित हुए? शायद इसलिए कि गालिब उन महान शायरों में से है। जो सम्प्रदाय, जाति, भाषा आदि के सभी बंधनों को तोड़ते हुए आगे बढ़ते हैं। ग़ालिब के संदर्भ में आजाद भारत के प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री कहा करते थे कि ''गालिब का जीवन एक मस्ती का जीवन था। आजाद ढंग से सोचना और बातें करना मनुष्य रूढ़ियों को तोड़ने वाले विरले ही होते हैं। गालिब उन थोड़े से लोगों में हैं, जिन्होंने रूढ़ियों को तोड़कर जो ठीक समझा उसे कहने में कभी संकोच नहीं किया। गालिब अपने समय के बर्नार्ड शॉ थे। शॉ की मौलिकता और वाक्पटुता उनकी सभी बातों में मिलती है। 19 वीं सदी के हिंदुस्तान में गालिब न केवल उर्दू के वरन् समस्त भारत-वर्ष के बहुत बड़े प्रतिभा सम्पन्न कवि है।।''[36]

गालिब के संदर्भ में बहुत चर्चित पंक्तियां हैं जिसे स्वयं गालिब ने बहुत पहले लिखा था-

''पूछते हैं वह, कि 'गालिब' कौन है?
कोई बतलाओ कि हम बतलाएं क्या?''[37]

इस तरह की शायरी ने 'उग्र' के दिल में गालिब की तस्वीर हमेशा-हमेशा के लिए बना डाली। सारा जहान गालिब को जानता है, पहचानता है, मगर फिर भी पूछते हैं कि गालिब कौन है? यह तो गालिब से भी बड़ा कोई गालिब है जो सैकड़ो इन्सानों में से गालिब का परिचय जानना चाहता है। इसी चिंतन धारा ने 'उग्र' को 'गालिब-उग्र' टीका लिखने को मजबूर किया। यह बात सच है कि गालिब ने समाज की रूढ़ियों, असमानताओं, कुरूपताओं आदि पर कुठाराघात किया है, वहीं 'उग्र' की भी चेतना गालिब के विचारों के ईद-गिर्द विचरण करती रही।

बेसहारा आदमी को दुःख मांजता है और वह वेदना या प्रताड़ना से उबर नहीं पाता

है, तो उसे ही सत्य मानकर जीना सीख लेता है। मगर दुःख की कसौटी पर खरा उतरते ही इस हकीकी और इश्क मिजाजी से बहुत ऊंचा दर्जा मिल जाता है। इसीलिए गालिब ने लिखा है कि-

''रंज से खुगर हुआ इंसा तो मिट जाता है रंज
मुश्किलें मुझपर पड़ी, इतनी कि आसां हो गयी।''[38]

गालिब को कदम-कदम पर समाज से बेदखल होने का कड़वा एहसास था। और 'उग्र' को भी जिंदगी के हर मुकाम पर विफलता ही हाथ लगती रही है। इन दोनों के जीवन के तीखे सच को बड़े स्पष्ट शब्दों में डा० रत्नाकर पाण्डेय ने व्यक्त किया है- '' 'उग्र' के जीवन के 66 वर्षो की दार्शनिक पीठिका गालिब के कलामों की व्याख्या में व्यक्त हुई है।''[39]

इस प्रकार 'उग्र' 'दीवान-ए-गालिब' की टीका लिखकर गालिब की परंपरा में आ खड़े हुए। वे 'गालिब-उग्र' टीका के माध्यम से प्रेम का दर्शन, विचारों का चिंतन और प्रकृति के गोद में बैठकर स्वतंत्र कल्पना लोक को हिंदी साहित्य जगत में सृष्टि और स्रष्टा के बीच के रिश्ते को उजागर किया है। यही वजह है कि 'उग्र' को भी एक टीकाकार के रूप में याद किया जाता है।

पत्र साहित्य

हिंदी पत्रकारिता जगत में 'उग्र' का लेखन एक लंबी बहस की मांग करता है। 'उग्र' समाज को साहित्य में जिस रूप में लाना चाहते थे, उसी रूप को पत्रकारिता में भी तरजीह दी। 'उग्र' का सर्वप्रथम हस्तलिखित पत्र सन् 1921 में 'उग्र' के नाम से वाराणसी से निकला। इसमें समाज के उपेक्षित विषयों को व्यंग्यात्मक शैली में लिखा करते थे। इसके बाद 'उग्र' ने पत्र साहित्य में 'सूत' (मासिक पत्र) 1924, 'स्वदेश' (दशहरा अंक) गोरखपुर से, 'मतवाला' (साप्ताहिक) 1924, कलकत्ता से, 'उग्र' (साप्ताहिक) 1938 काशी से, 'विक्रम' (मासिक) 1942, उज्जैन से, 'संग्राम' (साप्ताहिक) सन् 1945, बम्बई से, विक्रम (मासिक), 1947 बम्बई से, मतवाला (साप्ताहिक) सन् 1948 मिर्जापुर से, 'उग्र' (साप्ताहिक) 1954, दिल्ली और 'हिदी पंच' (पाक्षिक) सन् 1956 दिल्ली आदि ढ़ेर सारे पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन और प्रकाशन किया है।

'उग्र' ने पत्र-पत्रिकाओं के सामाजिक सरोकारों को बहुत स्पष्ट शब्दों में जीवंत कर

दिया है। वे अधिकांश पत्रों का उपयोग समाज की विसंगतियों एवं जनता और व्यक्तियों के सुधार के लिए व्यंग्यात्मक शैली का उपयोग करते रहे। उनका लिखना था कि "एक पत्र की मुझे सख्त जरूरत है और रहेगी सारी जिंदगी। मगर स्वभाव मेरे प्रशांत नहीं अशांत है.. .. ।"[40]

'उग्र' ने 'हिंदी पंच' पत्रिका का प्रकाशन 'अंग्रजी पंच' के प्रतिवाद स्वरूप किया था। उसमें समाज के अशांत स्वरूप को उभारने का सफल प्रयास किया गया। वे सर्व कल्याण के लिए एक सच्चे अखबार नवीस के उत्तरदायित्व बोध को बखूबी समझते रहे। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से उपनिवेशवादी सत्ता के निरंकुश मंसूबों को खुली चुनौती दी। वे महसूस करते थे- एक पत्रकार को प्रतिबद्ध, ईमानदारी, सफाई, साहस, न्यायप्रियता तथा समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हो, ताकि लेखन का महत्व हमेशा बना रहे। यही वजह है कि आलोचकों ने 'उग्र' को एक सफल सम्पादक के रूप में गौरवशाली परम्परा के प्रतिष्ठापक के रूप में और समाज के कुशल प्रतिनिधित्व के रूप में देखा।

'उग्र' के समस्त चिंतन के मूल में सामाजिक विभेद के तमाम दायरों से ऊपर इंसानियत की वैज्ञानिक तलाश थी। इन्हीं प्रवृतियों के आधार पर पत्रकारिता के यथार्थ बोध ा को जनसुलभ कराने का सफल प्रयास किया। 'उग्र' के पत्रकारिता से संबंधित सम्पूर्ण लेखन में कुरीतियों, अंधविश्वासों, तंत्र-मंत्र, ओझा-सोखा, भूत-प्रेत में तर्कहीन विश्वासों का विरोध, नारी जीवन की युगधर्मी मींमांसा, देशप्रेम का जागरण मंत्र तथा गुलामी की कारा से भारत की मुक्ति कामना, संप्रदायवाद का विरोध और हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल, सामंती व्यवस्था के विरोध और जन चेतना का जागरण, दलितों की बहुमुखी उत्थान चेतना और इन सबसे ऊपर यौन शोषण के तमाम् हथकंडों का पर्दाफाश, हिंदी साहित्य की दुर्गति, कला की कसौटी, पुराणों में नारी की उत्प्रेरणा, साहित्यकार और दारिद्रय पूर्ण स्थिति आदि विषयों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यह लेखन पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के सामाजिक, नैतिक उत्तरदायित्व को परिभाषित करता है।

कहानी

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने हिंदी कहानी के क्षेत्र में समस्या प्रधान लेखक के रूप में कदम रखा था। इन्होंने विवाह संस्था से सम्बद्ध समस्याएं, साम्प्रदायिकता की समस्याएं,

TH-10468
DISS O,152,3,N01,2;g 152 P2
Jawaharlal Nehru University Library

वर्णव्यवस्था की विद्रूपताएं, नैतिक मूल्यों का ह्रास, धनमद एवं सत्तामद में लिप्त उच्च समाज समलिंगी रति के कुरूप पाखण्डों, देशभक्ति पूर्ण ऐतिहासिक कहानियों (जालियांवाला बाग से संबधित कहानियां, रूसी क्रांति से संबंधित कहानियां, जापान-रूस युद्ध से संबंधित कहानियां, जापान-कोरिया युद्ध से संबंधित कहानियां, सिक्ख इतिहास से संबंधित कहानियां, राजपूत इतिहास पर आधारित कहानियां, सन् 1859 के स्वतंत्रता संग्राम पर आधारित कहानियां) और कलात्मक विचारों एवं दार्शनिक उपदेशों आदि पर केंद्रित कहानियां लिखकर अपनी पहचान बनायी है।

18 वीं सदी में विधवा विवाह समस्या अपने चरमोत्कर्ष बिंदु पर देखने को मिलती है। विधवाओं के प्रति समाज की दृष्टि हमेशा प्रदुषित रही है। राजाराम मोहन राय जैसे एकाध कुछ विचारकों ने विधवा समस्या की गंभीरता को समझा था। इसके बाद 21 वीं सदी की विलुप्त होती जिंदगी में आधुनिक समाज ने विधवाओं के प्रति थोड़ी सी हमदर्दी दिखायी। हिंदी साहित्य से इतर दूसरे अन्य साहित्य में विधवा की समस्याओं को तरजीह दी गई है। बाद में चलकर हिंदी के मूर्धन्य साहित्यकारों ने भी इस समस्या के प्रति सकारात्मक रूख अपनाया। हिंदी जगत में उत्तर भारत के दो ऐसे कलम के सिपाही दिखे, जो हिन्दी जगत में विधवा की समस्याओं से संबंधित रचनाओं को लेकर अवतरित हुए। इनमें प्रेमचंद और पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' प्रमुख रूप है। 'उग्र' ने लिखा है कि ''महात्मा! मैं विधवा हो गई तो उसमें मेरा क्या अपराध था? क्या मैंने वैधक्य को जानबूझकर बुलाया था? क्या मैंने ही अपने पति की हत्या की थी? क्या विधवाएं दानवी हो जाती हैं, उनमें पशुता आ जाती है? यदि नहीं तो समाज विधवाओं के प्रति इतना क्रूर क्यों है? आप क्षमा करेंगे, जब कहती हूं तो सब कहूंगी।''[41]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपने अधिकांश लेखन में विधवाओं को तेजस्वी स्वरों से भरा है। यह विधवाओं के प्रति सकारात्मक सोच का परिणाम है। 'उग्र' ने 'मतवाला' पत्रिका के संपादन के दौरान समाज के विभिन्न रंगों को अपनी नंगी आंखों से देखा था। यही वजह है कि 'उग्र' का सृजनात्मक मूल्य 'बहुजन हिताय' और 'बहुजन सुखाय' के सिद्धान्त की अभिव्यक्ति करता है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने लगभग सात कहानियां विवाह से संबंधित लिखी हैं। यह सभी कहानियां समाज के पोंगापंथी वर्ग द्वारा नारी जाति के प्रति अन्याय, रूढ़िग्रस्त जीवन की विपदाएं, विवाहित नारी की वंदिशें, पतिगृह में नारी की आकांक्षाओं का दमन, हृदयहीन समाज की कुण्ठित मानसिकता, समाज को लोकोपवाद के दायरे में बांधकर बाल वैधव्य को उचित ठहराना आदि विचारों से उत्प्रेरित हैं।

भारत की सबसे बड़ी समस्या हिंदू-मुस्लिम विवाद है। 'उग्र' जैसे रचनाकार इन समस्याओं से हमेशा टकराते रहे। वे बड़ी बेताबी से कहते रहे कि ''हमारे लिए हिंदू-मुसलमान दो नहीं हो सकते। मान-अपमान दोनों मेरी दृष्टि में बराबर है।''[42] पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने सांप्रदायिकता की समस्या को बहुत बारीकी से समझा था। धर्मांध हिंदू-मुस्लिम समाज एक दूसरे का भूखा होता है। इसमें राजनैतिक नेता स्वार्थ के वशीभूत होकर हिंदू-मुस्लिम विवाद को बढ़ावा देते रहे। इन सारी विविधताओं से उद्वेलित होकर 'उग्र' की कहानियां सभी सम्प्रदायों के नैतिक प्रभाव के द्वारा हिंसा और उपद्रवों को समुचित जबाव देती हैं। 'उग्र' 'खुदाराम' कहानी में हिन्दू-मुसलमान को संदेश देते हैं कि-

''तूने मंदिर बनाया तू भगवान है
मैंने मस्जिद उठाई मैं रहमान हूं
तू भी भगवान है मैं भी भगवान हूं
तू खुदा मैं खुदा, फिर जुदाई कहां?''[43]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने हिंदू-मुस्लिम सम्प्रदाय के विवाद को 'दोजख! नरक!!' कहानी में दिखाने का प्रयास किया है सम्प्रदायवाद की अंधी दौड़ में किस कदर हिंदू-मुसलमान एक-दूसरे के खून के प्यासे हैं। हिंदू-मुसलमान की गलत समझ का ही परिणाम है जो दंगों एवं वैमनस्य का माहौल पैदा होता है। 'उग्र' ने एक मुस्लिम पात्र की मनःस्थिति को कुछ निम्न रूप में पेश किया है-''मैं जब से पैदा हुआ तभी से यह सुन रहा था कि हिंदू बदजात और नापाक काफिर होते हैं, जिन्हे मारने से, सताने से, जन्नत मिलती है, हूरें मिलती हैं। खुदा खुश होता है।''[44] इस प्रकार भारत-पाक विभाजन के पहले एवं बाद के दिनों में हुए साम्प्रदायिक दंगों पर 'उग्र' की पैनी नज़र थी। उन्होंने साम्प्रदायिक विमर्श को केंद्र में रखकर लगभग बीस कहानियां लिखी हैं। उनमें से अधिक चर्चित कहानियां 'खुदाराम', 'दोज़ख की साग', 'मलंग', 'खुदा के सामने', 'शाप', 'दोज़ख! नरक!!' आदि प्रमुख रूप से बहुत चर्चित हुई।

भारत में वर्णव्यवस्था की बीमारी पांच हजार वर्षो बाद भी ठीक नहीं हो पायी है, क्योंकि इसका इलाज हाशिए के लोगो द्वारा नहीं किया जा सका है। वर्ण व्यवस्था ने समाज में असमानता का बीज बोया है। दुर्गुण, क्रोध, अभिमान, रूढ़ि एवं खोखली प्रेम का दंभ भरने वाले ब्राह्मण समाज की गलत प्रवृतियों का नजारा पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की 'ब्राह्मण द्रोही' और 'समाज के चरण' आदि कहानियों में देखा जा सकता है। 'उग्र' की दिव्य-दृष्टि अस्पृश्य

समाज के प्रति उचित एवं समायानुकूल रही है। भंगियों द्वारा गंदा कार्य करने के कारण उन्हें अछूत बनाया गया। 'उग्र' तर्कहीन वर्णव्यवस्था को बनाए रखने वाले पुजारियों से पूछते हैं कि ''कौन कहता है कि वे अछूत हैं? वे तुम्हारा मल साफ करते हैं इसी से तो तुम उन्हें अछूत कहते हो? ईश्वर भी तो मल साफ करता है! फिर उसे भी अछूत और अस्पृश्य क्यों नहीं समझते? उससे भी घृणा क्यों नहीं करते?''[45] 'उग्र' हमेशा अभिमानी और नीच ब्राह्मण समाज को चुनौती देते रहे हैं। वे स्वंय ब्राह्मण होकर भी वर्णव्यवस्था की कुटिल मानसिकता का प्रतिवाद करने में पीछे नहीं रहे। ब्राह्मणवादी विसंगतियों को ध्यान में रखकर ही 'उग्र' 'अपनी खबर' में लिखते हैं कि ''मैं यह कहना चाहता था कि आज भी मै निःसंकोच शूद्र हूं और ब्राह्मणों के घर में पैदा होने के सबब-साधारण नहीं-असाधारण शूद्र हूं। ब्राह्मण-ब्राह्मणी से मुझे शूद्र-शूद्राणी अधिक आकर्षक, अपने अंग के मालूम पड़ते हैं। यहां तक कि आज भी जब मैं खाना बदोशों, बंजारों, जिप्सियों की गंदगी, जवानी, जादू और मूर्खता से भरा गिरोह देखता हूं तब मेरा मन करता है कि लपक कर उन्हीं में लीन हो जाऊं, विलीन।''[46]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने वर्णव्यवस्था की विद्रूपताओं पर केंन्द्रित बहुत सी कहानियां लिखा है, परन्तु उन सभी का एक ही मन्तव्य रहा है-सार्वभौमिक मानवीय समानता के दृष्टिकोणों को अपनाना। न कोई ऊंच और न कोई नीच। सभी मानवीयता के पुजारी बने और पददलित या अछूत कहलाने वाले अस्पृश्य लोगों के प्रति सहानुभूति और बराबरी का व्यवहार करने की पक्षधरता को आत्मसात करें।

समाज नैतिक मूल्यों के प्रवाहमान पर टिका हुआ है। अव्यवस्था या शोषण की प्रवृति ने आदमी को अनैतिकता के गर्त में ढ़केल देती है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का नैतिक-युगबोध समय की मांग के अनुरूप था, क्योंकि उच्च तबका ब्रिटिश सत्ता से सांठ-गांठ करके साहूकारी, सामंती एवं काजलवादी कार्यो को खुब चला रखा था और सामाजिक अनाचार दुराचार को बढ़ावा दे रहा था। इन्हीं दुष्प्रवृतियों के वशीभूत होकर मानव अपने नैतिक मूल्यों को खोता जा रहा था। 'उग्र' इस अनैतिक दुष्चक्र को भलिभांति समझा और उसकपर अपनी कलम चलाई। उन्होंने 'नौ हजार नौ सौ निन्यानवे', 'आजादी से आठ दिन पहले', 'रंग', 'न्यूजरील', 'नेता का स्थान', 'जब सारा आलम सोता है', 'प्राइवेट इंटरव्यू', 'उरूज', 'ब्लैक एंड ह्वाइट', 'दूध के कार्ड' आदि चर्चित कहानियां लिखी है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की दृष्टि में अनैतिकता का बोलबाला बहुत बढ़ गया था। चारो तरफ शोषण एवं कुचक्र का साम्राज्य चल रहा था। इन सारी भारतीय मनोदशा को

ध्यान में रखकर 'उग्र' को लिखना पड़ा कि ''यही आज सारे मुल्क की हालत है-न आप खायेंगे आराम से, न दूसरों को खाने देंगे। पड़ोसी का फायदा रूके, भले अपना नुकसान हो जाय। नाक अपनी कटे तो कटे, मगर भाई का सगुन जरूर बिगड़े। इसी मनोदशा ने हमें तहजीब में पिछड़े लोगों का पिछलग्गू बनाकर रखा है।''[47]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने महसूस किया था कि 'धनमद और सत्तामद' के कारण ही मनुष्यत्व का पतन होता जा रहा है। इसमें अनपढ़ और निम्न जनता का खुब शोषण हो रहा है। ऐसी स्थिति में 'उग्र' ने असहाय और निर्बल जनता की पक्ष- धरता को स्वीकारा और पीड़ित समाज को लेखन की विषय-वस्तु बनायी। धनमद में लिप्त उच्च समाज किस तरह से अधःपतन के गर्त में जा रहा है, इसी का बयान 'उग्र' की 'पिशाची' में हुआ है। दूसरी तरफ 'उग्र' ने 'चित्र-विचित्र' कहानी में देश की स्वतंत्रता के बाद की माली हालत पर बेबाक टिप्पणी की है। उपर्युक्त कहानियों में 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' के नैतिक प्रवृति को टूटता हुआ दिखाया गया है और 'स्वांतः हिताय, स्वांतः सुखाय' की दानवीय दुर्गणों के चेहरे का स्पष्ट चित्र खिंचा गया है।

'उग्र' का लेखन अबाधगति से चलता रहा। उनकी प्रसिद्ध कहानियों में से 'बेईमानचन्द और ईमान सिंह', 'सनकी अमीर', 'गोपाल', 'कम्यूनिस्ट दरवाजे पर' आदि प्रमुख हैं। इन कहानियों में वर्तमान आर्थिक विषमता, धन का दुरुपयोग, धनिकों के प्रति दास्यभाव, धन का कुप्रभाव आदि विषयों को दिखाने की छोटी कोशिश है। तभी पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' को 'बेईमानचंद और ईमान सिंह' कहानी में लिखना पड़ा-''गहरी कमाई बिना हराम व्यापार के नहीं हो सकती''[48]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने समाज के समस्त कुरूप चेहरे को अपने चिंतन से ओझल नहीं होने दिया। चाहे व्यभिचार का संगीन से संगीन रूप ही क्यों न हो? कभी संकोच का अनुभव नहीं किया। 'उग्र' ने समलिंगी समस्या से भी टकराने का साहस किया है। आज समाज में समलिंगी शोषण का उदाहरण कम नहीं है। इन्हीं प्रवृतियों का खुला चित्रण 'चॉकलेट' कहानी है। इसके साथ ही साथ 'पालट', 'हे सुकुमार', 'व्याभिचार प्यार', 'जेल में', 'पाकेट बुक', 'हम फ़िदाये लखनऊ' आदि कहानियाँ सामाजिक दुर्गुणों पर कारूणिक संवेदना पैदा करती हैं। 'उग्र' ने समाज के निठल्ले एवं काली तस्वीरों को लिपिबद्ध करने में संकोच नहीं किया। वे अप्रत्याशित रूप में बड़े साहस के साथ लिखते हैं कि ''है कोई माई का लाल जो....यह कहने का दावा करे कि- तुमने जो कुछ लिखा है, गलत लिखा है।

समाज में ऐसी घृणित रोमांचकारिणी और काजलवाली तस्वीरें नहीं हैं।''[49] ऐसे विचारों से लैस 'उग्र' कभी टस से मस नहीं हुए और न ही अपनी लेखन प्रवृति को बदला। एक दम सपाट तनकर आजीवन खड़े रहे।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की नजर स्वतंत्रता आंदोलन की प्रत्येक गतिविधियों पर भी थी। यही वजह है कि 'उग्र' ने सन् 1857 की क्रांति, राजपूतों एवं सिक्खों के ऐतिहासिक वीरताओं, जालियावाला बाग, रूसी क्रांति, जापान-रूस युद्ध, कोरिया-जापान युद्ध एवं असहयोग आंदोलन से प्रभावित होकर अनेक कहानियां लिखी है। उन्होंने 'देश द्रोही', 'सिक्ख गुरू का बाग', 'सरदार', 'प्रस्ताव स्वीकार', 'पंजाब की महारानी' जैसी चर्चित कहानियों का सृजन किया है। इन समस्त कहानियों में पंजाब सूबे में आए दिन घट रही घटनाओं को आधार बनाया गया है। जिसमें पंजाब की वीर नवजवानों की शौर्य गाथाएं दर्ज हैं, वहीं स्वतंत्रता आंदोलन में देशद्रोही की भूमिका निभाने वाले लोगों के काले मंसूबों को भी दिखलाया गया है। इसकी जड़ में अंग्रेजी सत्ता की फूट डालो और राज करो' की नीति की सफल चेष्टा को पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने निःसंकोच भाव से आलोचना करने का जोखिम भरा उत्तरदायित्व निभाया है।

'उग्र' ने राजपूत इतिहास से संबंधित अनेक कहानियों का भी सृजन किया है। इसमें 'ऐसी होली खेलो लाल' कहानी बहुत ही विवादित रही है। इस कहानी ने स्वतंत्रता आंदोलन के नवयुवकों को अधिक प्रेरित किया। वहीं दूसरी तरफ ब्रिटिश शासन की नींव को हिला दिया था। इसमें गायन पद्धति का भी सहारा लिया गया था। 'रेन आफ टेरर', 'नादिर शाही', 'भीषण-स्मृति' और चलाये गये दमन चक्र एवं अमानुषिक अत्याचारों की पोल खोलती हैं। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'जालियांवाला बाग' हत्याकांड पर आधारित 'मां कैसे मरी' कहानी उस घटना की कच्चा चिट्ठा खोलती है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की देश के साथ-साथ विदेशों के बदलते घटनाक्रमों पर नजर रहती थी। तभी उन्होंने 'वीरकन्या', 'पागल', 'निहिलिस्ट', 'भीषण संतोष' और 'कर्तव्य और प्रेम' जैसी कहानियां लिखकर रूस की क्रांतिकारी बदलाव एवं पुलिस प्रशासन के प्रति जनता के आक्रामक प्रतिशोध की भावना को भारतीय जनमानस के लिए भी प्रेरणास्रोत एवं ग्राहय बनाया। 'स्वदेश के लिए' एवं 'प्यारी पताका', कहानी जापान-कोरियाई युद्ध में स्वदेश की रक्षा के लिए प्राण का बलिदान करने वाले देशभक्तों की जीति जागती तस्वीर दर्ज है।

'उग्र' द्वारा रचित भारत के असहयोग आंदोलन पर कई कहानियां चर्चित हुई। इनमें 'वह दिन', 'झाऊ लाल', 'नागा नर सिंह दास', 'उसकी मां', 'प्यारी तलवार', 'देशभक्त' आदि कहानियां प्रमुख हैं। इन कहानियों में देशभक्ति के सभी संघर्षो को बड़ी कुशलता से चित्रित किया गया है। यही नहीं-पाण्डेय बेचन श्र्मा 'उग्र' ने दार्शनिक एवं कलात्मक कहानियों का भी सृजन किया है। संगीत-समाधि, मेघराग, आठवां स्वर, कला का पुरस्कार, भ्रम, रिसर्च, प्रार्थना, विकास, बाजार वालों, रेशमी, फुलझड़ी, कीट, मेरे यार आदि कहानियां कला एवं ईश्वर भक्ति की महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति बन गयी हैं। इनमें सांसारिक चित्तवृतियों के साथ-साथ ईश्वर-साधना और कला-साधना की मनोवृतियों की रोचक जानकारी मिलती है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने कहानी विधा की बनी-बनायी क्षुद्र नीतियों से हटकर एक संवेदनशील लेखक की भावभूमि को तैयार किया है। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक आदि सभी विषयों को कथा-साहित्य के लिए उपयुक्त एवं समय सापेक्ष बनाया। वहीं परंपरागत मूल्यों से अलग हट कर रास्ता अख्तियार किया है। 'उग्र' का रचना-संसार विविधता पूर्ण चरित्रों से सराबोर है। यही पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का सृजनात्मक पक्ष है।

उपन्यास

इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर देश में कुछ ऐसे विमर्श पैदा हुए हैं जिसको लेकर बोद्धिक जगत असमंजस में फंसा हुआ है। इनमें साम्प्रदायिकता की समस्या, भ्रष्टाचार की समस्या, दलित-आदिवासियों की समस्या, शराबी और घुसखोरी की समस्या, सामंती शोषण की वर्चस्ववादी नीतियां, फिल्मी जीवन के माध्यम से खण्डित होती कला और सांस्कृतिक मूल्य, धार्मिक शोषण के काले मंसूबों और रूप के सौदागरों द्वारा भगाई गई युवतियों के यौन-शोषण संबंधित समस्याएं तथा वेश्यावृति की समस्या आदि प्रमुख हैं। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के औपन्यासिक चिंतन में उपर्युक्त सभी समस्याएं अपने ज्वलंत विचारों के साथ स्थान पाती हैं। उन्होंने 'कढ़ी में कोयला' उपन्यास के 'ठाठ' अध्याय में लिखा है कि ''भारतीय समाज के बिगड़ते स्वास्थ्य पर निरोग प्रकाश डालने की कोशिश मैंने की है, वैसी ही कोशिश मैं एक जमाने से करता आ रहा हूं। मेरे सभी उपन्यास, उपन्यास कहीं कम और सामाजिक रोगों के एक्स-रे फोटो कहीं ज्यादा है।''[50]

'उग्र' का पहला उपन्यास सन् 1923 ई० में 'मतवाला-मंडल' द्वारा प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास हिंदू-मुस्लिम एकता से जुड़े संदर्भो का विस्तृत आख्यान है। इसमें देश में बढ़ रही हिंदू-मुस्लिम द्वेष की भावना को मुरारी (हिंदू पात्र) और नर्गिस (मुस्लिम पात्र) के प्रेम संबंधों द्वारा एक-दूसरे धर्म के प्रति फैली घृणा को जीतने का सफल प्रयास किया है। इसमें रूढ़िवादी सम्प्रदाय के कुत्सित रूप को दिखाया गया है। इस रूढ़ि को बुद्धि का निश्चय कर, मन का संकल्प कर और दो युवा हृदयों के प्रेम संबंध के मध्य पड़ने वाली भीषण विपदाओं के यथातथ्य कारक का खुली-चुनौती देने का भरपूर प्रयास किया गया है। 'चंद हसीनों के खुतूत' के सभी पात्र संप्रदायवाद की परिधि को बड़ी कुशलता से तोड़ते हुए आगे बढ़ते हैं। यह उपन्यास पत्रात्मक शैली में लिखा गया है। इसमें सात पत्रों का संकलन है। इस उपन्यास में नर्गिस जैसे पात्र प्रेम-विवाह में आने वाली बाधा के कारण वह इस्लाम धर्म से घृणा करने लगती हैं। वह बड़े ओजस्वी स्वर में कहती है कि ''मैं उन्हें (मुरारी) अपना मान लिया है, अब दुनिया की कोई भी ताकत हमें अलग नहीं कर सकती। मै उनकी हूं और वे मेरे हैं।''[51]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का दूसरा प्रसिद्ध उपन्यास 'दिल्ली का दलाल' सन् 1927 में प्रकाशित हुआ। इसमें अनैतिक नारी व्यापार के अड्डों को परत-दर-परत खोलकर दिखाया गया है। 'उग्र' का यह प्रसिद्ध उपन्यास समाज की समस्त विद्रूपताओं पर कड़ा प्रहार करता है। 'दिल्ली का दलाल' उपन्यास में स्त्रियों का नाजायज व्यवसाय करने वाले नरपिशाच, भले घर की सीधी-सादी किशोरियों को किस तरह फंसा और उड़ा कर उल्लू सीधा करते हैं, इन सारे तथ्यों का उपन्यास में जीता जागता दस्तावेज मिलता है। 'उग्र' ने वेश्यावृति समस्या को आर्य समाजियों के मुखौटे के रूप में भी चित्रित किया है। इससे सामाजिक उत्थान में लगी विभिन्न सामाजिक संस्थाओं की ईमानदारी पर प्रश्न लग जाता है। 'दिल्ली का दलाल' की भूमिका में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए, साथ ही युवा पीढ़ी को सचेत करते हुए लिखा है कि ''जो हो, आज मेरा दावा यह है कि भला हो, अगर 'दिल्ली का दलाल' उपन्यास को सारे देश के स्कूलों में बालक बालिकाओं के कोर्स में रखकर पढ़ा दिया जाया करे, ताकि बुराई की ओर कदम उठाने के पहले वह परिणाम से तो परिचित रहें।''[52]

'बुधुआ की बेटी' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1927 ई० में 'मतवाला प्रेस', कलकत्ता से हुआ। इस उपन्यास का नाम अड़तीस वर्ष बाद सन् 1964 में 'मनुष्यानंद' रख दिया गया। अब सवाल उठता है कि पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' को 'बुधवा की बेटी' से मनुष्यानंद'

नाम रखने की आवश्यकता क्यों पड़ी? यह प्रश्न आज भी आलोचकों के लिए रहस्य का विषय बना हुआ है। क्योंकि 'उग्र' का 'मनुष्यानंद' नाम रखने के पीछे क्या तर्क था? इसका स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। परन्तु 'उग्र' ने 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में 'उग्र-उवाच' शीर्षक के अन्तर्गत-लिखा है कि ''आज मैं इस नतीजे पर पहुंच चुका हूं कि मारे अंहकार के अपनी भूल भी न सुधारना-दार्शनिकों द्वारा यह बतलाए जाने के बावजूद कि मुंह में काला लगा हुआ है-सूनी-अनसुनी कर, गुणी के गुण, हुनर का कलंकित-मुखौटा लगाए, चमकते-चकराते बाजारों में अशंकित चक्कर-पर-चक्कर लगाना है।''[53] उपर्युक्त कथन से ऐसा लगता है कि 'उग्र' को कुछ प्रसिद्ध विद्वानों या दार्शनिकों ने नाम परिवर्तन का मसविरा दिया हो। ऐसे में यह कहना उचित लगता है कि 'बुधुआ की बेटी' नाम से 'मनुष्यानंद' नाम रखने का प्रमुख कारण गांधीवादी विचार के प्रभाव का असर ही है। क्योंकि 'उग्र' महात्मा गांधी के सबसे करीबी लोगों में से एक थे।

वैसे 'बुधुआ की बेटी' का नाम रखने के पीछे 'उग्र' का क्या मन्तव्य था यह मैं नहीं जानता। मगर मैं उपन्यास के शीर्षक पर थोड़ी चर्चा करना अनिवार्य समझता हूं। 'बुधुआ' नाम 'बुद्धु' शब्द से बना है। जिसका अर्थ है-अनपढ़, गंवार, जाहिल। इस शब्द में जितना लोक स्वर दिखाई पड़ता है उससे कहीं ज्यादा 'बेटी' शब्द में शहरी जीवन की भाषायी पहचान है। लेकिन उपन्यास में बुधुआ का चरित्र जैसा है वैसा ही उसका नाम भी रखा गया है। दूसरी तरफ राधा पढ़ी-लिखी नारी है, उसको 'बेटी' शब्द से लेखक ने संबोधित किया है, जो बहुत सटीक और औपन्यासिक परिवेश के अनुकूल है। जहां तक 'मनुष्यानंद' शीर्षक का प्रश्न है। इस पर बौद्ध धर्म की वैचारिक छाप दिखाई पड़ती है। क्योंकि उपन्यास में 'मनुष्यानंद' का दार्शनिक रूप भी उभरा है। इसपर बौद्ध धर्म के गुरूओं के नामकरण की परंपरा का प्रभाव है। 'मनुष्य+आनन्द'-अर्थात् मनुष्यों के आनन्द, खुशहाली, समानता, न्याय, विकास और असहाय लोगों की सेवाभाव में कर्त्तव्य पारायण लगे रहना ही 'मनुष्यानंद' का सोपान है। इस प्रकार पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का 'बुधुआ की बेटी' (मनुष्यानंद) उपन्यास का नाम कथानक और पात्र दोनों के अनुरूप है, जो 'उग्र' की दूर-दृष्टि और परिपक्व लेखन की विशिष्टता परिभाषित करता है।

उपन्यास में मनुष्यानंद का एक अघोड़ी के साथ-साथ महापुरूष का व्यक्तित्व भी उभर कर आया है। मनुष्यानंद जैसे पात्रों में महात्मा गांधी का चरित्र स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, क्योंकि उपन्यास में मनुष्यानंद दलितोद्धार के लिए गांधीवादी क्रियाकलापों का सहारा लेता

है। जैसे-अछूतों को रहने के लिए 'अछूताश्रम' बनाना और उसमें चर्खा कातना, रूई धुनना, चरखे बनाना, बढ़ई के अन्य काम तथा पंखे, मेज, कुर्सी आदि स्वदेशी हुनर सिखाने की व्यवस्था मनुष्यानंद करता है। यह महात्मा गांधी के स्वदेशी आंदोलन का हिस्सा था जिसको मनुष्यानंद कर्त्तव्यनिष्ठा के साथ निभाता है। एक बात और कहना कि मगर पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की सोच 1964 तक बदल चुकी थी। उन्होंने लिखा है कि-''इस उपन्यास का विषय दलितोद्धार का सवाल 36-37 बरस पहले से आज काफी सुलझ चुका है।''[54] शायद यही उद्घोष 'उग्र' को 'मनुष्यानंद' नाम रखने में सहायता किया हो। दूसरी बात यह है कि यदि 'उग्र' को नाम बदलना ही था, तो 'मनुष्यानंद' से उपयुक्त अन्य कोई नाम 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास के लिए उचित नहीं था, क्योंकि बुधुआ-रधिया के बाद मनुष्यानंद ही एकमात्र ऐसा पात्र है, जो उपन्यास के आरंभ से लेकर अंतिम दृश्य तक समय के अनुरूप आया है। ऐसे में 'बुधुआ की बेटी' नाम के बाद सबसे उपर्युक्त एवं तर्क संगत नाम 'मनुष्यानंद' ही है, जिसे पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपनाया है।

'बुधुआ की बेटी' उपन्यास पत्रावली शैली में लिखा गया है। यह उपन्यास 47 पत्रों का एक संग्रह है। उपन्यास का प्रत्येक शीर्षक विषय-वस्तु की दिशा को निर्धारित करता है। जिसका मुख्य शीर्षक रधिया कौन है?, बेचारा बुधुआ, ओघड़, अफवाह, कौन रोता है?, लियाकत हुसैन, सुकली, खून हो गया, बुधुआ का बयान, पादरी जानसन, किसका बच्चा है?, बारह बरस बाद, पादरी की राय, झूलेवाली, स्पाई, पहली पंचायत, चोट लगी क्या, दूसरी पंचायत, प्रेम अंधा होता है, स्वार्थी-घनश्याम, हड़ताल, राइट कापत्र, अबला राधा, घोषणा, बाबा विश्वनाथ की जय, यह कौन है?, मिलन और प्रयाण और कटिंग हैं। इन शीर्षकों के क्रम में कोई तालमेल नहीं है। यह 'उग्र' के लेखन की कमजोरी ही कही जाएगी। वैसे पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के सभी उपन्यास पत्रात्मक शैली में ही लिखे गये हैं। 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास के प्रमुख पात्रों में रधिया, बुधुआ, मनुष्यानंद, पादरी जानसन, मिसेज यंग, मिस्टर यंग, लियाकत हुसैन, रहमान, घनश्याम, गुलाब चंद, सुकली, और कुत्ता स्पाई प्रमुख है। इन पात्रों में कई जोड़े हैं, जो एक ही संवाद को व्यक्त करते हैं। इनमें बुधुआ-सुकली, मिस्टर यंग-मिसेज यंग, घनश्याम-राधा, कीनाराम (मनुष्यानंद) और उसकी पत्नी आदि के संवादों में स्त्री-पुरूष के बीच संबंधों एवं उठे विवादों पर स्पष्ट एवं बेवाक टिप्पणी बहुत ही महत्वपूर्ण बनकर उभरी है।

'बुधुआ की बेटी' उपन्यास का कथानक बहुत ही सधा हुआ है। उपन्यास की शुरूआत

'रधिया कौन है' शीर्षक से होता है। इसमें भंगिन रधिया की सुन्दरता के प्रति ललचायी दृष्टि से गुलाबचंद और घनश्याम जैसे मनचले देखते हैं। और तरह-तरह के असभ्य विचार व्यक्त करते हैं। 'बेचारा बुधुआ' शीर्षक में अछूत समाज के विवाह संस्कार के तौर-तरीकों पर टिप्पणी किया गया है। इसमें बुधुआ की पहली पत्नी की मृत्यु की त्रासदी का वर्णन भी किया गया है। बुधुआ अपनी मेहरारू के दवा-दारू के वास्ते सभी डाक्टरों का दरवाजा खटखटाता है, परन्तु अछूत बुधुआ की कौन सूने? 'पिता-पुत्र' शीर्षक के अधीन घनश्याम आधुनिक समाज का प्रतिनिधित्व करता है वहीं बलरामजी परंपरागत आदर्श विचारधारा के द्योतक हैं। मगर प्रभाव घनश्याम जैसे पात्रों का अधिक है। 'परिवर्तन' के अन्तर्गत बुधुआ के वैचारिक स्तर में बरलाव को तरजीह दी गई है। समय के थपेरों ने बुधुआ को परिवर्तनगामी बना डाला। पांचवां अध्याय-'औघड़' है। इसके केन्द्र में बाबा कीनाराम का अखाड़ा है, जिसमें समाज के समस्त अछूत एवं ब्राह्मण की समस्याओं का कर्मकाण्डी तौर तरीके से इलाज होता है। 'अफवाह' शीर्षक में अघोड़ी मनुष्यानंद के जीवन की कहानी बताई गई है। इसमें कीनाराम की पत्नी का दूसरे व्यक्ति के साथ अवैध संबंधों को लेकर अघौड़ी 'मनुष्यानंद' घर-बार छोड़ जंगल में चला जाता है। जो बाद में चलकर विश्वप्रसिद्ध काशी नगरी में अघोड़ी के आश्चर्यचकित व्यक्तित्व से समाज प्रभावित होता है और अघोड़ी 'अखाड़े' में अछूत भंगिन को न आने देने पर समाज के उच्च ठेकेदारों की खोज-खबर लेता है। 'कौन रोता है?' आठवां अध्याय है, जिसमें भंगी के लड़के के रोने की आवाज सुनकर अघोड़ी मनुष्यानंद उसे प्रेम से गले लगाता है और महापुरूष के व्यक्तित्व का परिचय देता है।

'लियाकत हुसैन' उपन्यास का नौवां अध्याय है जिसमें लियाकल जैसे फकीरों की गलत मंसूबों का पर्दाफाश किया गया है। जो मजारों, मंदिरों की आड़ में सीधी -सादी महिलाओं के अंधभक्ति का फायदा उठाकर यौन-शोषण की दुकान खोल रखे हैं। 'सुकली' अध्याय में महिलाओं की पुत्र-प्राप्ति की लालसा के छद्म क्रिया-कलापों को उजागर किया गया हैं। 11 वां और 12 वां अध्याय में लियाकत हुसैन के यौन शोषण के बाजार में बुधुआ की मनः स्थिति और हत्या के आरोप में बुधुआ की जेल में बंदी का विवरण मिलता है। 'बुधुआ का बयान' शीर्षक में हत्या के बाद बुधुआ के साहस पूर्ण किए गये बयान को दर्ज किया गया है।

'भयानक आश्चर्य' में मिस्टर यंग-मिसेज यंग के संवाद के द्वारा स्त्री-पुरूष विमर्श का वर्णन मिलता है। पन्द्रहवें पाठ में पादरी जानसन और मनुष्यानंद का संवाद है, जो

नारी-विमर्श की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में उभरा है। 'किसका बच्चा है?' में रधिया का पालन-पोषण के लिए पादरी जानसन के यहां मनुष्यानंद का अनुरोध है जिसको पादरी स्वीकार करता है। 'अघोड़ी के पीछे' अध्याय के अंतर्गत 'स्त्री-स्वातंत्र्य-समर्थिनी-समिति' की काल गुजारियों का खुला बयान किया गया है। इसमें परपुरूषों से संबंधों को दिखाया गया है।

'उत्तरार्ध' शीर्षक में मनुष्यानंद के गांधीवादी प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उसके बाद 'बुधुआ बच गया' जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है कि इसमें बुधुआ हत्या के आरोप से बरी हो जाता है। परन्तु 'बारह बरस बाद' जेल से छूटता है। 'अरे, वाह!' में रधिया एवं बुधुआ का मिलन दिखाया गया है। वहीं 'पादरी की राय' में राधा के व्यवहार एवं विचार पर पादरी जानसन की महत्वपूर्ण टिप्पणी है।

'झूलेवाली', 'गुदगुदी', 'चारो खाने चित्त', 'गुडईवनिंग मिस', 'चोट लगी क्या?' और 'प्रेम अंधा होता है' शीर्षक में रधिया के जवानी के उफान पर गुलाबचंद और घनश्याम की हवस दिली विचारों का वर्णन मिलता है। 'पहली पंचायत', 'दूसरी पंचायत', 'समर्थक' आदि शीर्षक में भंगी समाज की नव चेतनावादी अंगड़ाई को दिखाने की कोशिश की गई है। 'विरोधी' अध्याय में भंगियों को एक जुटता के लिए मनुष्यानंद हर संभव प्रयास करता है और आंदोलन के लिए वैचारिक भूमि भी तैयार करता है। 'राधा लापता!', 'स्वार्थी घनश्याम' पाठ के अंतर्गत राधा को घनश्याम द्वारा फूल के बगीचे में कई महिने तक विवाह के नाम पर यौन-शोषण करने की कथा बताई गयी है। 'हड़ताल', 'युद्ध होगा', 'घोषणा' आदि शीर्षक में भंगियों के हड़ताल के सामाजिक दुष्प्रभाव को दिखाया गया है। 'धोखा', 'राइट का पत्र', 'अबला राधा' अध्याय में रधिया के वेश्यागमन की जिंदगी का वर्णन मिलता है।

'बाबा विश्वनाथ की जय', 'मिलन और प्रयाण' शीर्षक में अछूतों द्वारा मंदिर प्रवेश के कार्यक्रम को मनुष्यानंद ने तमाम् विरोधों के बावजूद सफल बनाने में अमूल्य योगदान का विस्तृत वर्णन किया गया है। 'यह कौन है?' में रधिया और लियाकत हुसैन के आत्मग्लानि के अंतिम प्रसंग को दिखाया गया है। और लेखक ने दोनों को पश्चाताप करने का मौका दिया है। 'यह कौन है?' उपन्यास का अंतिम शीर्षक अध्याय है, जिसमें नारी चेतना के विषय-वस्तु को उभारा गया है। इस उपन्यास में अनेक समस्याओं से जुड़े वैचारिक आंदोलनों को गांधीवादी तरीके से सुलझाने की सफल कोशिश की है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने हिंदू समाज में जड़ पड़ी दलित एवं नारियों की समस्याओं को शाश्वतरहित दिखाने की साहसिक पहल की गई है। इसमें दलितोद्धार, दलित नारी के उन्नयन, पाखंडी समाज के धन-पशु,

सामंती-व्यवस्था की अनैतिक प्रवृतियों और ब्राह्मणवादी व्यवस्था के अधीन चल रहे पुरोहितवाद, कर्मकांड, बाह्याडम्बर, फकीरों की भ्रष्ट कुरीतियों के साथ-साथ जातिवादी शिकंजों को तोड़ने का पूरा प्रयास किया गया है। इस उपन्यास में मनुष्यानंद-दलितोत्थान, रधिया-दलित-नारी चेतना और बुधुआ-दलित जीवन के यथर्था का प्रतिनिधि करने वाले पात्र हैं। इन तीनों पात्रों में व्यक्तिगत नहीं बल्कि वर्गीय चेतना का आधार मिलता है।

यदि गौर से देखा जाए तो 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में उग्र ने जिन-जिन समस्याओं से जूझने और उन्हें हल करने की कोशिश की थी, वे सभी समस्याएं 21 वीं सदी में भी मौजूद हैं। 'उग्र' एक प्रतिबद्ध रचनाकार थे। उनके लिए साहित्य में कलात्मक सरोकारों से ज्यादा अहंम् अपने समकालीन कर्तव्यों का निर्वाह करना था। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के वैचारिक उत्तरदायित्व से प्रभावित होकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि ''समाज की भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के बीच धर्म, समाज सुधार, व्यापार व्यवसाय, सरकारी काम, नयी सभ्यता आदि की ओट में होने वाले पाखण्डपूर्ण पापाचार के चटकीले चित्र सामने लाने वाली अनेक रचनाएं 'उग्र' जी की हैं। 'उग्र' की भाषा बड़ी अनूठी, चपलता और आकर्षक वैचित्रय के साथ चलती है। उस ढंग की भाषा उन्हीं उपन्यासों और चांदनी जैसी कहानियों में ही मिल सककती है।''[55] 'उग्र' खुद एक ब्राह्मण होकर भी वे ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था का इतना सशक्त प्रत्याख्यान कैसे कर पाए? शायद इसका उत्तर उनके जीवन की विषम परिस्थितियों में ढूंढ़ा जा सकता है। वे ब्राह्मणवादी व्यवस्था के जातिवादी शिकंजों को तोड़ने के लिए हमेशा उतावले रहते थे। दूसरी तरफ गरीबी, कष्ट और अज्ञान की मार खाकर ही वे शूद्रों के जीवन को पहचान सके थे। और उनके साथ अपनी आत्मिक अभिन्नता का अनुभव कर सके थे। तभी तो निःसंकोच भाव से 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में लिखा है कि ''हिन्दू मूर्ख हैं, उन्हें अभी संसार के चरणों की अनेक ठोंकरे खानी हैं। इसीलिए उनके यहां जातियां, उपजातियां, ऊंच-नीच और अछूत है।''[56]

'शराबी' उपन्यास का सन् 1930 ई० में 'मतवाला' में धारावाहिक प्रकाशन हुआ। इस उपन्यास में शराब द्वारा पैदा होने वाली अनेक सामाजिक विद्रूपताओं की कड़ी निंदा की गई है और वेश्यावृति के उन्मूलन हेतु लेखक ने सार्थक प्रयास किया है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने लिखा है कि ''ऐ शराब को गले लगाने वालों, बचो इससे! यह वह नशा है जो अच्छे से अच्छे इन्सान को शैतान की भट्टी में बरबस ले जाकर झोंक देता है''[57]

'सरकार तुम्हारी आंखों में' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1937 ई० में लखनऊ से हुआ। इस उपन्यास का उद्देश्य है-सामंती व्यवस्था की मनोदशाओं का नग्न चित्रण जिसमें कलाकारों एवं रचनाकारों के जीवन एवं मर्यादात्मक दायित्व का सरेआम गला घोटा गया है। 'उग्र' का 'घण्टा' उपन्यास भी सन् 1937 ई० में ही कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। इसमें अष्टधातु के 'घण्टे' को उपन्यास का नायक बना कर इतिहास के मिथक को यथार्थ घोषित किया गया है। इसमें मंदिरों के पीछे चल रहे पापाचारों को रोकने की पहल की गई है। क्योंकि 'घण्टे' के आस-पास जीवन जीते पुजारियों की वासनात्मक ज्वाला अपने उफान पर थी। यही वजह है कि 'उग्र' को 'घण्टा' उपन्यास लिखना पड़ा था।

'कढ़ी में कोयला' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1955 में मिर्जापुर के 'मतवाला प्रेस' से हुआ। 'उग्र' ने लिखा है कि '''कढ़ी में कोयला' में जैसे एक या एकाधिक भारतीय समाज के बिगड़ते स्वास्थ्य पर नीरोग प्रकाश डालने की कोशिश मैंने की है।''[58] इस उपन्यास में स्वतंत्रता का प्रतीक 'कढ़ी' एवं भ्रष्टाचार एवं चोरबाजारी, कदाचार का प्रतीक 'कोयला' के बीच के संबंधो को उजागर करने की कोशिश की गई है। 'जी जी जी' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1955 ई० में ही दिल्ली से हुआ। इसमें भी समाज में हो रहे बेमेल विवाह के दुष्परिणामों को स्पष्ट एवं ईमानदारी पूर्वक दिखाया गया है। 'फागुन के दिन चार' सन् 1960 में दिल्ली से छपा। और 'जुहू' उपन्यास 1963 ई० में दिल्ली से ही प्रकाशित हुआ। इसमें फिल्मी सृजन के दायित्वबोध को बताने का प्रयास किया गया है, क्योंकि गलत फिल्मांकन से जीवन के वैचारिक मूल्यों एवं कला-संस्कृति संबंधी चिंतन में परिवर्तन होने लगा था। 'उग्र' ने 'फागुन के दिन चार' उपन्यास लिखकर फिल्मी जीवन के उद्देश्य को समझाने की कोशिश की है। 'गंगामाता' 'उग्र' का प्रसिद्ध उपन्यास है जो सन् 1972 ई० में दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। इसमें दो तरह की सामाजिक समस्याओं का जिरह है। पहले में साम्प्रदायिक सौहार्द्र कायम रखने की अपील की गई है और दूसरे में नारी जागरण का मंत्र फूंका गया है। 'उग्र' का अंतिम उपन्यास 'सब्जबाग' है जो सन् 1979 में दिल्ली से छपा। यह उपन्यास 'उग्र' के मरने के बाद प्रकाशित हुआ था। इसमें लेखक और प्रकाशक के बीच पैदा होने वाले विभेदों की खुली चर्चा की गई है।

अतः पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' अपने समस्त औपन्यासिक लेखन में समाज की दुष्प्रवृतियों से जुझने का प्रयास किया है। उन्होंने साहित्य, समाज एवं साहित्यकार सभी के लिए चुनौती खड़ी की। ताकि स्वतंत्र देश में समाज का प्रत्येक मानव अपनी-अपनी अस्मिता

एवं मान-मर्यादा के लिए झगड़े नहीं। उनका प्रयास था कि समता, बंधुत्व और प्रेम-मर्यादा का वातावरण बने और सभी लोग अपने-अपने तरीके से जीने का मार्ग ढूंढ़े। इसी में देश एवं समाज की भलाई है, इज्जत है, और यही उचित भी है।

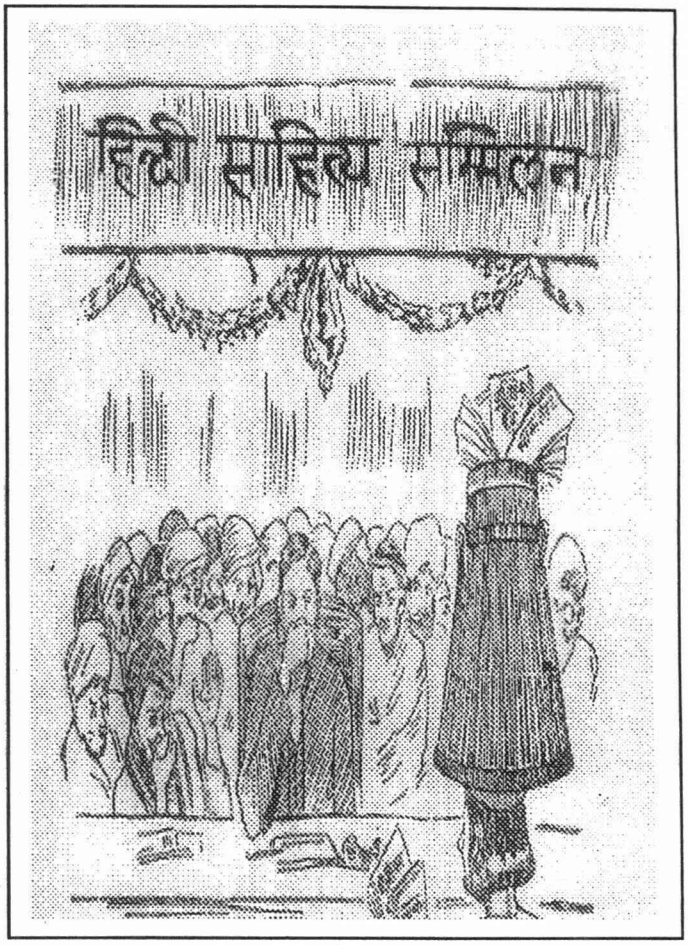

घासलेटी आंदोलन

विश्व प्रसिद्ध विद्वान आर्डोनो के अनुसार 'साहित्यकार यथार्थ चित्रण तभी कर सकता है जब उसे समाज की अंतरवस्तु के सत्य की गहराई का बोध हो।' यह विचार अतियथार्थवादी लेखकों के लिए वरदान साबित हुआ। इस विचार पर पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जैसे लेखक स्पष्ट रूप से खरे उतरते हैं। क्योंकि उन्होंने कुछ ऐसी क्रांतिकारी कहानियां लिखी हैं जिससे हिंदी जगत् स्तब्ध-सा रह गया, मानो समाज पर पहाड़ टूट गया हो। इस संदर्भ में 'उग्र' जो कुछ भी सोच रहे हों, परन्तु उसने झूठे आदर्शों में लिप्त साहित्यकारों की मंडली का बड़ी कुशलता से भंडाफोर किया था। जिस समाज में शराबखोरी, जुआ, चोरी, परस्त्रीगमन आदि सामाजिक समस्याओं को पाप समझा जाता रहा है, उसी समाज में ऐसे भी लोग रहे हैं जो महापाप के कटु चेहरे पर परदा डालते रहे हैं। इन विचारों में 'चॉकलेट-पंथी'[59] 'अप्राकृतिक मैथुन' या 'सोडॉमी' को गिनाया जा सकता है। इन सारे विषय-वस्तु को लेकर 'उग्र' ने ढ़ेर सारी कहानियां और उपन्यासों का सृजन किया है। इसी साहित्य को 'घासलेटी साहित्य' के रूप में जाना जाता है। घासलेटी साहित्य उस साहित्य को कहते हैं जिसमें यौन जीवन के अनैतिक रूप को प्रस्तुत किया गया हो और जिसके प्रति समाज चुप्पी रखता आया है। जिसे देखकर भी समाज की अंतरआत्मा उसके विरुद्ध विद्रोह करने में असमर्थता का अनुभव करती है। इसे ही 'अश्लील-साहित्य' की सज्ञा भी दी जाती

है। डॉ० रत्नाकर पाण्डेय ने बड़ी निर्भिकता से 'उग्र' की बातों का पक्ष लेते हुए लिखते हैं कि '''उग्र' ने दिल्ली का दलाल, बुधुआ की बेटी, चिंगारियां आदि में सामाजिक विडम्बनाओं और कुप्रवृतियों का नग्न रूप समाज की आंखों के सामने खोलकर दिखाया है। स्वरूपवान लड़कों के साथ अमानुषिक व्याभिचार की अनेक सच्ची घटनाओं को आधार बनाकर जब उन्होंने 'मतवाला' में अनेक कहानियां लिखी थीं तो उन्हें 'घासलेटी आंदोलन' के समर्थक हिंदी महारथियों से टक्कर लेनी पड़ी। 'उग्र' ने कभी किसी की निंदा, स्तुति नहीं की। वे दृढ़ और स्पष्टवादी साहित्यकार थे।''[60]

घासलेटी आंदोलन संबंधी 'विशाल भारत' में प्रकाशित कार्टून

बनारसी दास चतुर्वेदी जैसे आदर्श की दुहाई देने वाले लेखकों ने 'उग्र' की 'चॉकलेट' कहानी के प्रतिवाद स्वरूप 'घासलेटी' आंदोलन चलाया था। मगर पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का उद्देश्य बहुत ही स्पष्ट और समाज सुधार की भावना से प्रेरित था। इसी लिए 'उग्र' ने 'चाकलेट' कहानी की भूमिका में बहुत ही ओजस्वी स्वर में लिखा है कि-''शिक्षण संस्थाओं, बाल संस्थाओं में शिक्षक पद पर नियुक्त लोग डूब कर मछली निगलने वाले हैं, जो सत्तर चुहें खा कर दूसरों को हज की शिक्षा देते हैं।''[61]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जैसे साहित्यकार लेखन में आदर्शवाद का मूलम्मा चढ़ाने से परहेज करते रहे। उन्होंने कथा-साहित्य के सामाजिक सरोकारों को अच्छी तरह से पहचाना था, तभी वे साहित्य में नग्न चित्रण करने को ही कलात्मक उपयोगिता समझते थे। 'उग्र' ने सामाजिक कुरीतियों का दुष्परिणाम बतला कर सुकुमार, अबोध, सुंदर बालकों के प्रति होनेवाले 'चॉकलेट-पंथी' व्याभिचारों की घोर निंदा की है। आज हम सभी 21वीं सदी के

दहलीज पर खड़े हैं। 'उग्र' द्वारा उठाई गयी समस्त समस्याएं हमारे सामने मुंह बाए खड़ी हैं। आज इन कुरीतियों से लड़ने वाला, उनपर लिखने वाला साहित्यकार या पत्रकार नहीं हैं। जबकि भारतीय संविधान ने सबको अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दे रखा है। आखिर आज का साहित्यकार सामाजिक विद्रुपताओं पर लिखने का जोखिम क्यों नहीं उठा पाता है? क्या सामाजिक उत्तरदायित्व के आंसू सूख गये हैं? या अब कलम में उतनी ताकत नहीं रह गयी है। या यह डर है कि समाज और साहित्यकारों की मंडली उसे अछूत बना देगी, वह भी पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की तरह। 'उग्र' की बेचैनी से महात्मा गांधी जैसे जन नेता अवश्य चिंतित थे। यहां गांधीजी की 'चॉकलेट' कहानी पर बेबाक टिप्पणी का उल्लेख करना ज्यादा उचित और तर्क संगत है। उन्होंने लिखा है कि-''लेखक ने अमानुषी व्यवहार पर घृणा ही पैदा की है।''[62]

'उग्र' के 'चॉकलेट' कहानी संबंधी विवाद को लेकर डा० रत्नाकर पाण्डेय ने लिखा है कि-'' समाज के छद्मवेशी व्यभिचारों के प्रलोभनों, धूर्तताओं और षड्यंत्रों के जाल में फंसकर किशोरावस्था के लोग जो अप्राकृतिक व्यभिचार से अद्यपतन की ओर चले जाते हैं, उसी के नग्न चित्रण का नाम 'चॉकलेट' है।''63 इन्हीं विचारों के संदर्भ में सन् 1962 में नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने के अवसर पर स्टाइन बेकन नें अपने भाषण में साहित्यकारों की जिम्मेदारी को स्पष्ट करते हुए कहा था कि 'लेखक साहित्य के सामाजिक सरोकारों को समझते हुए हमारी दुर्गुणों एवं कमजोरियों का परदाफाश करे, हमारे काले और खतरनाक मनसूबों को घसीटकर समाज के सामने लायें, ताकि हमारा मानसिक स्तर सुधरे।' पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने एक रचनाकार की हैसियत से ठीक इसी समाजिक भूमिका का निर्वाह किया है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' एक मंचीय उद्घोषणा में, तथ्यों की स्पष्ट प्रस्तुति में अतिवादी होने का अरूचिकर भय अवश्य सताता है, परन्तु वे नग्न यथार्थ चित्रण को लेकर कलम के दुरुपयोग की बात करना नहीं स्वीकारते थे। उन्होंने लिखा है कि-''है कोई माई का लाल जो हमारे वर्तमान समाज को नीचे से ऊपर तक सजग दृष्टि से देख कर, कलेजे पर हाथ रख कर, सत्य के तेज से मस्तक तानकर इस पुस्तक (चॉकलेट) के अकिंचन लेखक से यह कहने का दावा करे कि - तुमने जो कुछ लिखा है गलत लिखा है। समाज में ऐसी घृणित रोमांचकारिणी और काजलवाली तस्वीरें नहीं हैं।''[64] 'उग्र' की इस स्वीकारोक्ति का आज तक किसी भी लेखक ने जवाब देने का साहस नहीं जुटा पाया है।

इससे 'उग्र' के अप्राकृतिक व्यभिचारों पर केंन्द्रित कहानियों एवं उपन्यासों की प्रामाणिकता का आधार तैयार होता है। अन्यथा घासलेटी आंदोलन चलाने वाले साहित्यकारों की मंडली इसका तार्किक प्रमाण पेश करने से नहीं चूकते।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की 'चाकलेट-पंथी' कहानियों में 'पालट', 'पॉकेट बुक', 'चॉकलेट', 'जेल में', 'व्यभिचारी प्यार','हे कुमार', 'हम फिदायेलखनऊ' एवं 'एक साहित्यिक अनर्थ' आदि प्रमुख हैं, वहीं 'फागुन के दिन चार', 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी' आदि उपन्यासों में काशी की जिंदगी के स्पष्ट चित्र उभरे हैं, जिसमें वेश्यागमन और लौंडेबाजी के कुकर्मो की प्रवृति रईसों व उच्चकूलों के व्यक्तियों में प्रचलित थे। यह बात सही है कि 'उग्र' ने समाज की वास्तविकताओं का उद्‌घाटन करने हेतु सर्वस्वीकारोक्ति से अधिक अश्लील शब्दों का प्रयोग किया है। इसी लिए 'उग्र' के अश्लील लेखन की प्रतीक 'चॉकलेट' कहानी संग्रह के प्रकाशन के बाद 'विशाल भारत' पत्रिका (कलकत्ता) के संपादक बनारसी दास चतुर्वेदी ने 'उग्र' के साहित्य को अनैतिक घोषित कर और दुर्भावना से प्रेरित होकर 'घासलेटी आंदोलन' की अगुवाई की थी।

'उग्र' के 'चॉकलेट-पंथी' लेखन संबंधी विवादों के अंतिम दौर में हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध आलोचकों को वास्तविकता का एहसास हो गया था। वे सभी लेखक सोचने लगे थे कि सदियों से चले आ रहे पापाचारों पर अधिक दिनों तक आवरण नहीं चढ़ाया जा सकता है। 'उग्र' की इसी साहित्यिक उपयोगिता को ध्यान में रखकर हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि-''समाज के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के बीच धर्म, समाज सुधार, व्यापार-व्यवसाय, सरकारी काम, नई सभ्यता आदि की ओट में होने वाले पाखण्ड को पापाचार के चटकीले चित्र सामने लाने वाली कहानियां, जैसी 'उग्र' जी की हैं।''[65]

संदर्भ-सूची

अध्याय-1

१. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' - 'दिल्ली का दलाल'- पृष्ठ संख्या-१

२. 'उग्र'- साहित्य अकादमी पृष्ठ संख्या-६१

३. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'-अपनी खबर -पृष्ठ संख्या-८७

४. 'उग्र'-साहित्य अकादमी पृष्ठ संख्या-५६

५. 'उग्र'-'उग्र' के सात रंग-'रूपया' (निबंध)-पृष्ठ संख्या-११

६. 'उग्र'-साहित्य अकादमी-पृष्ठ संख्या-६०

७. वही.... पृष्ठ संख्या-६१

८. वही .....पृष्ठ संख्या-६३

९. वही.....पृष्ठ संख्या-८०

१०. रत्नाकर पाण्डेय-'उग्र' और उनका साहित्य-पृष्ठ संख्या-१७७

११. 'उग्र'-साहित्य अकादमी-पृष्ठ संख्या-८१

१२. रत्नाकर पाण्डेय-'उग्र' और उनका साहित्य-पृष्ठ संख्या-१८७

१३. वही.....पृष्ठ संख्या-१८८

१४. वही.....पृष्ठ संख्या-१९२

१५. वही.....पृष्ठ संख्या-१९३

१६. 'उग्र'-इन्द्रधनुष-परिशिष्ट - पृष्ठ संख्या-४-५

१७. 'उग्र' - साहित्य अकादमी - पृष्ठ संख्या-८९

१८. रत्नाकर पाण्डेय - 'उग्र' और उनका साहित्य -पृष्ठ संख्या-२०१

१९. 'उग्र' - अपनी खबर - पेपर बैक्स - पृष्ठ संख्या-८

२०. वही.....पृष्ठ संख्या-१६

२१. 'उग्र'- साहित्य अकादमी - पृष्ठ संख्या-८४

२२. 'उग्र' - अपनी खबर - पेपर बैक्स - पृष्ठ संख्या-९७

२३. वही....पृष्ठ संख्या-१०६

२४. वही.....पृष्ठ संख्या-९

२५. वही.....पृष्ठ संख्या-१६

२६ वही - पृष्ठ संख्या-८

२७. मैनेजर पाण्डेय - साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - पृष्ठ संख्या-६८-६९

२८. रत्नाकर पाण्डेय - 'उग्र' और उनका साहित्य -पृष्ठ संख्या-२०३

२९. 'उग्र' - अपनी खबर - पेपर बैक्स - पृष्ठ संख्या-१५-१६

३०. वही.....पृष्ठ संख्या-१६

३१. वही.....पृष्ठ संख्या-१८

३२. वही.....पृष्ठ संख्या-१९

३३. रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य साधना - भाग-१ -पृष्ठ संख्या-१०८

३४. 'उग्र' - 'गालिब - 'उग्र' - अंजन - पृष्ठ संख्या-८

३५. रत्नाकर पाण्डेय - 'उग्र' और उनका साहित्य - पृष्ठ संख्या-३५६

३६. दयाकृष्ण - 'गालिब' - प्राक्कथन - पृष्ठ संख्या-५६

३७. 'उग्र' - 'गालिब-उग्र' -पृष्ठ संख्या-६०

३८. वही...पृष्ठ संख्या-२४७

३९. रत्नाकर पाण्डेय -'उग्र' और उनका साहित्य - पृष्ठ संख्या-३६६

४०. वही....पृष्ठ संख्या-४५

४१. 'उग्र' - 'दिल्ली दंगो वाली' (कहानी) - पृष्ठ संख्या-५६

४२. 'उग्र'- 'शाप' (कहानी) - पृष्ठ संख्या-३३

४३. 'उग्र'- 'खुदाराम' - ऐसी होली खेलो लाल (संग्रह) -पृष्ठ संख्या-८६

४४. 'उग्र'- 'दोजख ! नरक !!' - पृष्ठ संख्या-६८

४५. 'उग्र' - 'समाज के चरण' - पोली इमारत (संग्रह) -पृष्ठ संख्या-१४१

४६. 'उग्र' - अपनी खबर - पृष्ठ संख्या-१६

४७. 'उग्र'- 'दूध के कार्ड' - पोली इमारत (संग्रह) - पृष्ठ संख्या-६६

४८. 'उग्र' - ' बेईमान चंद और इमान सिंह' - सनकी अमीर (संग्रह) - पृष्ठ संख्या-१६६

४९. 'उग्र' - कैफियत - चाकलेट (कहानी) पृष्ठ संख्या- ख

५०. 'उग्र'- 'कढ़ी में कोयला' - पृष्ठ संख्या-७

५१. 'उग्र'- 'चन्द हसीनो के खुतूत' - पृष्ठ संख्या-५०-५१

५२. 'उग्र'- 'दिल्ली का दलाल'- पृष्ठ संख्या-ग

५३. 'उग्र'- 'बुधुआ की बेटी' - पृष्ठ संख्या-ग

५४. वही.....पृष्ठ संख्या-ग

५५. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृष्ठ संख्या-२६६

५६. 'उग्र' - 'बुधुआ की बेटी' - पृष्ठ संख्या-७६

५७. 'उग्र'- 'शराबी' - पृष्ठ संख्या-१५५

५८. 'उग्र'- 'कढ़ी में कोयला' - पृष्ठ संख्या-७

५९. 'उग्र' - 'चाकलेट' (कहानी) - पृष्ठ संख्या-१००

६०. रत्नाकर पाण्डेय - 'उग्र' और उनका साहित्य - पृष्ठ संख्या-२५५

६१. 'उग्र'- 'चाकलेट' - कैफियत - पृष्ठ संख्या-क

६२. 'मतवाला' (पत्र) - छः जुलाई १६२६ - पृष्ठ संख्या-१२

६३. रत्नाकर पाण्डेय - 'उग्र' और उनका साहित्य - पृष्ठ संख्या-२५७

६४. 'उग्र' - 'चाकलेट' (कहानी) - पृष्ठ संख्या-ख

६५. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृष्ठ संख्या-२६७

अध्यायः दो

यथार्थ की अवधारणा और 'बुधुवा की बेटी'

- यथार्थ क्या है
- यथार्थ-बोध की अवधारणा
- सामाजिक यथार्थ
- राजनैतिक यथार्थ
- धार्मिक यथार्थ
- आर्थिक यथार्थ

यथार्थ क्या है

'यथार्थ' शब्दों के साथ-साथ अर्थों का भी होता है और यदि विषय-वस्तु का यथार्थ होतो उपन्यास विधा को और अत्यधिक प्रामाणिकता मिलती है। 'यथार्थ' का मूल उद्देश्य समाज, साहित्य एवं कला का ज्ञानात्मक और संवेदनात्मक बोध कराना है। इसलिए 'यथार्थ' का अर्थ है-वास्तविकता, सच्चाई, असलियत और समाज की फोटाग्राफी या सिनेमेटोग्राफी। 'यथार्थ' लेखन जीवन के वास्तविक अंकन पर बल देता है। यथार्थ प्रत्येक रचनाकार का अलग-अलग होता है, परन्तु उसे आकर्षक और कलात्मकता प्रदान करना लेखक की अपनी अभिव्यक्ति क्षमता पर निर्भर करता है। यथार्थवादी विचारधारा का प्रादुर्भाव साहित्य में सर्वप्रथम स्तांदाल और बाल्जाक जैसे पाश्चात्य विद्वानों के लेखन से शुरू हुआ। देश विशेष के संदर्भ में सबसे पहले यथार्थवादी चिंतन ने फ्रांस और रूस में अपना पांव फैलाया। रूस में इसकी एक लम्बी परंपरा चल पड़ी, जो गोगोल से होकर तुर्गनेव, दोस्तोयेवस्की, तोलस्तोय, कुप्रिन, गोर्की और चेखव आदि रचनाकारों तक चलती आयी है। दूसरी तरफ अंग्रेजी साहित्यकारों के यहां भी यथार्थ-लेखन संबंधी लम्बी श्रृंखला देखने को मिलती है। जिनमें गिसिंग, मूर, बेनेट, सॉमर सेटमॉम तथा गॉल्सवर्दी आदि प्रमुख लेखक आते हैं।

उपन्यास विधा की शुरूआत ही यथार्थ-लेखन के साथ हुई। यही वजह है कि पाश्चात्य रचनाकारों ने यथार्थवादी-दृष्टि को विशेष रूप से उपन्यास में अपनाया और बाद में यूरोप के कई देशों में यथार्थवादी विचारकों का व्यापक आंदोलन भी चला। जिनमें जोला और मोपासॉ जैसे प्रसिद्ध उपन्यासकारों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। इन सभी लेखकों ने कथा-साहित्य में वर्ण्य-विषय को यथा-तथ्य सृजन पर बल दिया। इस विचार को लेकर पाश्चात्य विद्वानों में मतभेद भी रहा है। ऐसे में यह कहना तर्क संगत लगता है कि 'यथार्थ-लेखन किसी बनी बनायी विचारधारा या सिद्धान्त पर सम्भव नहीं है। वह हमेशा अपने परिवेश से उत्प्रेरित होता है।'

प्रसिद्ध विद्वान हार्वर्ड फॉस्ट ने यथार्थ के स्वरूप को लेकर एक विचार गढ़ा था। उनका मानना था कि ''यथार्थ का स्वरूप एकात्मक होता है द्वयात्मक नहीं।''[1] यहां द्वयात्मक विचार का मतलब है-'यथार्थ' का विविध रूप। हालांकि बाद में एकात्मक विचार को लेकर फॉस्ट साहब के ऊपर यथार्थ-बोध को सीमित करने का आरोप भी लगाया गया। वैसे अधिकांश यथार्थवादी उपन्यासकारों का मानना रहा है कि 'एक कथाकार का यथार्थ-चित्रण तभी संभव है, जब उसमें सत्य की अनुभूति का वास्तविक ज्ञान हो।' और यह सत्यानुभूति कभी एकात्मक हो ही नहीं सकती। अगर ऐसा संभव भी हुआ तो किसी भी हद तक यथार्थ-चित्रण को झुठलाया जा सकता है। यही कारण है कि आधुनिक युग के रचनाकार यथार्थ-बोध को सम्पूर्ण साहित्य के लिए अनुगामी मानते है। साथ ही उसे भिन्न-भिन्न दृष्टियों से जाँचने-परखने पर बल भी देते हैं।

यह बात सच है कि हिन्दी साहित्य में यथार्थवादी चिंतन पाश्चात्य जगत के प्रभाव की देन है, परन्तु भारतीय साहित्य का यथार्थ-बोध अपना अलग ही महत्व रखता है। क्योंकि भारत विविधताओं वाला देश है। यही विशिष्टता हिंदी साहित्य सृजन में भी देखने को मिलती है। 'यथार्थ' समाज की विभिन्न दुर्बलताओं, क्रूरताओं का होता है और महान परिकल्पनाओं का भी। हालांकि आज हिंदी जगत में यथार्थवाद मुख्य रूप से पीड़ाओं, वेदनाओं एवं वंचित समाज (अछूत समाज) आदि को लेकर आगे बढ़ा है। जिसे आज दलित और नारी विमर्श के रूप में देखा जा रहा है। इसका प्रामाणिक दस्तावेज 'बुधुआ की बेटी (मनुष्यानंद)' उपन्यास है।

यथार्थवादी चेतना सामयिक व्यवस्थाओं का यथा तथ्य, सूक्ष्म और स्पष्ट विवरण प्रस्तुत करती है। इन्हीं संवेदनाओं को पाश्चात्य विद्वानों ने 'सत्याभास' (Versimilitude) सिद्धांत के रूप में अभिव्यक्त किया इस विचार प्रणाली ने सृजन के क्रम में कल्पनात्मक चरित्रों को अपनाया, जिसे बाद में यथार्थवाद की कोटि में रखा जाने लगा।

आरम्भ में यथार्थ की पृष्ठभूमि और प्रेरणा-स्त्रोत भौतिक शास्त्र ही रहा है। जिसे लंबे अर्से के बाद साहित्य में जगह मिली। कुछ मनोविश्लेषकों का मानना रहा है कि ''यथार्थ-बोध की शुरूआत मानव-मन के अंदर पलने वाले क्रिया-कलापों के अध्ययन से आरंभ होती है।''[2] यह बात स्पष्ट है कि मनुष्य की प्रत्येक क्रियाएं उसके मनोवैज्ञानिक-चिंतन द्वारा संचालित होती है,परन्तु साहित्य-सृजन कभी निरूद्देश्य नहीं रहा है और न ही होगा। वह सदा मानवीय मूल्यों एवं क्रिया-कलापों पर केन्द्रित होकर आगे बढ़ा है। इन्हीं बातों को ध्यान में

रखकर औपन्यासिक विश्लेषक रामदरश मिश्र ने लिखा है कि ''यथार्थ एक व्यापक और संश्लिष्ट वस्तु है जिसमें मानव समाज के सामूहिक और व्यक्तिगत, बाहरी और भीतरी, परिस्थितिगत और मानसिक, अंधकारमय और प्रकाशमय सभी प्रकार के सत्य एक दूसरे से मिले-जुले होते हैं।''[3]

यथार्थ-चित्रण रोमांस जैसी कोई वस्तु नहीं है और न ही सिर्फ मनोरंजन मात्र। बल्कि लेखक के अवचेतन में बसे यथार्थ को अधिक महत्व देता है। समाज की रूढ़ियों को नंगा करके दिखाता है। घृणित एवं कुत्सित रूपों का चित्रण करता है। और बाह्य जगत के भीतर छिपे विद्रूप चेहरे को उजागर करता है। साथ ही साथ उसे तटस्थ, निष्पक्ष एवं इमानदारी से अभिव्यक्ति का विषय-वस्तु बनाता है। यथार्थ-बोध की इसी अवधारणा को पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने स्वीकार किया है। इन्हीं विचारों को ध्यान में रखकर जार्ज लूकाच ने लिखा है कि ''यथार्थ-बोध के लिए दम्भ रहित अटल ईमानदारी जरूरी है, जो महान लेखकों में मिलती है।''[4]

यथार्थ-बोध को निरंतर परिर्वनशील ईकाई के रूप में भी देखा जाता है। किसी यथार्थ-चिंतन को पहले से बनी-बनायी सीमा में नहीं बांधा जा सकता है। वह निरन्तर समाज को राह दिखाने वाली होती है। इन्हीं गुणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यथार्थवादी साहित्य समाज को बदलने की चेतना पैदा करता है और मनुष्यत्व समाज के विकास की ओर संकेत भी करता है। इसके लिए जरूरी है कि व्यक्ति और समाज स्वयं सक्रियता दिखाये। अन्यथा साहित्य और समाज दोनों का विकास संभव नहीं है। इसी सार्वभौमिक दृष्टि को ध्यान में रखते हुए डा० मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि ''यथार्थ स्थिर और जड़ नहीं होता। वह गतिशील, परिवर्तनशील और व्यापक विकास प्रक्रिया का हिस्सा होता है।''[5] 'उग्र' कृत 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास उपर्युक्त विचारों से प्रेरित है। उसमें समाज के अछूतपन की जड़वादी मानसिकता चित्रण मिलता है। इसमें 'उग्र' ने इस उपन्यास में समाज को परिवर्तनगामी बनाने के लिए संघर्ष की गांधीवादी विचारधारा को आधार बनाया है।

यथार्थ-सृजन में जीवन मूल्य और उसकी बोध की प्रक्रिया कोई स्थायी प्रक्रिया या अपरिवर्तनीय अवधारणा नहीं है, बल्कि वह विकासोन्मुख और अनुभव सापेक्ष होती है। हालांकि प्रत्येक मनुष्य की दृष्टि उसके मानसिक क्षितिज, क्षमता, उसके अपने उद्देश्य एवं जीवननुभवों से विकसित होती है। यह जीवन अनुभव सभी के लिए अलग-अलग महत्ता

रखती है। इसी विशिष्टता को दर्शाते हुए गेटे ने लिखा है कि ''पीड़ित हृदय के लिए आत्मीयता की एक दृष्टि कुबेर के कोष से भी अधिक बहुमूल्य है।'' [6]

हिंदी साहित्य में यथार्थ-बोध की अवधारणा विभिन्न रूपों में मिलती है। हिन्दी के विद्वान जब भी साहित्य के यथार्थ-सृजन की बात करते हैं, उसे 'जनसमूह के हृदय का विकास' (बालकृष्ण भट्ट), 'जनता की चितवृत्ति का संचित प्रतिबिंब' (आचार्य रामचंद्र शुक्ल), 'ज्ञान राशि का संचित कोश' (महावीर प्रसाद द्विवेदी), 'साहित्य समाज का दर्पण है' (मैथिलीशरण गुप्त) और 'मानव सत्ता का अध्ययन' (मुक्तिबोध) आदि के रूप में समाज से जोड़कर देखते हैं। यथार्थवादी साहित्य उन बेकसूर आदमियों के लिए लड़ता है जो 'शब्दों के आगे गूंगे' हैं और हर तरह से शोषित हैं। प्रेमचंद की भाषा में ''जो दलित है, पीड़ित है, वंचित है-चाहे वह व्यक्ति हो या समूह, उसकी हिमायत और वकालत करना उसका (साहित्यकार) फर्ज है।''[7]

अधिकांश आलोचक साहित्य और समाज के इतिहास को एक दूसरे के पूरक मानते हैं। इन्हीं कारकों को ध्यान में रखकर साहित्य और समाज के रिश्ते को स्पष्ट रूप से डा० मैनेजर पाण्डेय ने परिभाषित करने का प्रयास किया है-''साहित्य का अस्तित्व समाज से अलग नहीं होता, इसलिए साहित्य का विकास समाज के विकास से कटा हुआ नहीं हो सकता। साहित्य सामाजिक रचना है, साहित्यकार की रचनाशील चेतना उसके सामाजिक अस्तित्व से निर्मित होती है, साहित्यिक कर्म की पूरी प्रक्रिया सामाजिक व्यवहार का ही एक विशिष्ट रूप है, इसलिए साहित्य का इतिहास समाज के इतिहास से अनेक रूपों में जुड़ा होता है।''[8]

मार्क्स का मानना था कि 'साहित्य समाज का दर्पण भी होता है और उसका मार्गदर्शक भी, तभी उसकी भूमिका क्रांतिकारी होती है।' इन्हीं क्रांतिकारी चरित्रों को पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' नें अपने लेखन में संभव कर दिखाया है। इनके समकालीन लेखक प्रेमचंद ने भी यथार्थ-बोध को बड़े ओजस्वी स्वर में शब्दबद्ध किया है-''साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है...बल्कि उनके (समाज) आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।''[9] इसी दायित्व बोध ने जार्ज लूकाच को उपन्यास लिखे जाने के बाद भी "Theory of Novels" (1916) लिखने की आवश्यकता महसूस हुई।

कोई लेखक यथार्थ-चित्रण के द्वारा जीवन और जगत की वास्तविक आवश्यकताओं को साहित्य या कला में प्रामाणिक अभिव्यक्ति देता है, इसीलिए किसी एक रचनाकार के यथार्थ को दूसरे लेखक के यथार्थ का प्रतिमान बनाकर खारिज नहीं किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हिंदी कथा-साहित्य में प्रेमचंद की कसौटी पर कस कर पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के यथार्थ-बोध को 'अतियथार्थ' या 'अश्लील साहित्य' कहकर नकारा नहीं जा सकता है।

सर्वप्रथम ऐंगल्स ने सन् 1888 ई में 'यथार्थवाद' का प्रयोग उपन्यास के संदर्भ में किया था। उन्होंने इस बात को स्वीकार किया था कि 'यथार्थ-लेखन के द्वारा ही संसार की सामाजिक एवं राजनीतिक सच्चाई का ज्ञान होता है।' इन्हीं विशिष्ट ज्ञानात्मक अनुभूति के आधार पर ही लेखक का दर्जा तय होता है। इन सभी विचारों को ध्यान में रखते हुए मार्क्सवादी चिंतन को नये रूप में परिभाषित करने वाले सुप्रसिद्ध विद्वान ग्राम्सी ने लिखा है कि ''एक ही ऐतिहासिक यथार्थ की अभिव्यक्ति करने वाले दो लेखकों मे से एक उस यथार्थ का कलाकार बन जाता है और दूसरा केवल प्रवक्ता।''[10] यथार्थ-सृजन के लिए किसी कृतज्ञता या सहानुभूति की जरूरत नहीं होती है बल्कि '' जो लिख दिया, बज्र लेख''[11] की तरह प्रतिबद्ध और दृढ़ लेखन की प्रबल आवश्यकता होता है। इसके बावजूद लेखक की यह स्वीकारोक्ति-''इन संस्मरणों को पढ़ने पर किसी को ऐसा लगे कि मैंने निन्दा या बुराई किसी की की है तो यही मानना होगा कि मुझे ठीक तरह से लिखना आया नहीं।''[12] यह कथन पाठकों को स्वयं आलोचक की भूमिका निभाने का खुला मंच प्रदान करती है कि यथार्थ-बोध का पैमाना क्या होना चाहिए?

हिंदी उपन्यास विधा की पैदाइश 'महाकाव्य' की भरपाई के लिए हुई। उसे समाज के सच की अभिव्यक्ति के वास्ते स्वीकारा गया, परन्तु इस विधा के लिए भी कई सिद्धान्त गढ़े गए और अभिजात्यवादी, मनोविश्लेषण, मार्क्सवादी, यथार्थवादी, अतियथार्थवादी, आदर्शवादी एवं अस्तित्ववादी आदि विचारों पर केन्द्रित उपन्यासों का सृजन किया गया। हिंदी उपन्यास जगत के पुरोधा प्रेमचंद ने अपने लेखन मे आदर्शवादी दृष्टि को अपनाया था। वहीं पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने हमेशा से समाज की विषमताओं को नग्न रूप में सामने लाने का पूरा प्रयास किया है। चाहे वह अतियथार्थ के रूप में ही क्यों न हो? इसीलिए अब तक उपन्यासों में किये गए 'वाद' के प्रयोग की चर्चा करना उचित है।

ग्रीक और लैटिन साहित्य में 'अभिजात्यवादी' दृष्टि को वहां की महान संस्कृति और इतिहास की कालजयी रचनाओं में आसानी से ढूंढ़ा जा सकता है। भारतीय लेखन के संदर्भ में 'रामायण' (वाल्मीकि), अभिज्ञानशाकुंतलम् (कालीदास) जैसी रचनाओं को अभिजात्यवादी प्रवृति में रखा जा सकता है। आधुनिक युग में 'राम की शक्ति पूजा' (निराला), कामायनी (जयशंकर प्रसाद), गोदान (प्रेमचंद) और 'असाध्य वीणा' (अज्ञेय) आदि रचनाओं को अभिजात्यवादी विचार से उत्प्रेरित मान सकते हैं। अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में 'डिवाइन कॉमेडी' (दांते), 'पैराडाइज लास्ट' (मिल्टन) और 'वेस्टलैंड' (इलियट) आदि कृतियां अभिजात्य साहित्य की धरोहर हैं। इस संस्कृति ने सम्पूर्ण समाज के प्रतिबद्ध लेखकों को नये सिरे से साहित्य की उपयोगिता पर सोचने के लिए बाध्य किया, इसी के परिणाम स्वरूप प्रामाणिक अभिव्यक्ति के साथ 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास हमारे सामने है।

स्वछंदतावाद ने भी उपन्यास कला को प्रभावित किया है। शुरूआती दौर में इस विचारधारा में रोमांस के प्रति आकर्षण दिखा और प्रकृतिप्रेम के प्रति लगाव भी। परन्तु आधुनिक सजगता और प्रतिबद्धता की प्रवृति ने मनुष्य एवं भाषा दोनों की मुक्ति के मार्ग को बढ़ावा दिया। स्वच्छंदतावादी लेखकों में गेटे, वड्सवर्थ, कॉलरिज, बायस, शेली, कीट्स जैसे प्रसिद्ध रचनाकार थे, वहीं हिंदी में निराला, जयशंकर प्रसाद, पंत और महादेवी जैसे प्रसिद्ध लेखक हैं। इन सभी ने विद्रोह, भाव प्रवणता, कल्पना, अतीतोन्मुखता, अद्भूत के प्रति आकर्षण, व्यक्तिवाद, सौंदर्याभिमुखता आदि प्रवृतियों को आवश्यकता के अनुरूप तोड़ने और गढ़ने की भरपूर कोशिश की और उन्मुक्तभाव से आगे बढ़ने का साहस किया। इसका प्रभाव उपन्यास विधा पर भी पड़ा।

मनोविश्लेषकों में जहां फ्रायड, एडलर, युंग विद्वान थे, वहीं मार्क्सवादी लेखकों की समृद्ध परंपरा रही है। मार्क्स एवं ऐंगल्स ने जोला, डिकेंस और बाल्जाक जैसे यथार्थवादी उपन्यासकारों की रचनाओं की समीक्षा किया। दूसरी तरफ लेनिन ने टॉलस्टाय और पुश्किन जैसे लेखकों के औपन्यासिक कला पर विस्तार से चर्चा की है, परन्तु उपन्यास की यथार्थवादी दृष्टि पर मिखाइल बाख्तीन और रॉल्फ फॉक्स की आलोचनात्मक टिप्पणी बहुत ही महत्वपूर्ण है। रॉल्फ फॉक्स लिखते हैं कि ''उपन्यास का विषय है-व्यक्ति। यह (उपन्यास) समाज के विरूद्ध, प्रकृति के विरूद्ध, व्यक्ति के संघर्ष का महाकाव्य है। और यह केवल उसी समाज में विकसित हो सकता था, जिसमे व्यक्ति और समाज के बीच संतुलन नष्ट हो चुका हो और जिसमें मानव का अपने सहजीवी साथियों अथवा प्रकृति से युद्ध ठना हो। पूंजीवादी समाज

ऐसा ही समाज है।'[13] फॉक्स साहब के उपर्युक्त कथन से उपन्यास विधा के यथार्थ की व्यापकता को आसानी से अनुभूति किया जा सकता है। इस विचार के केन्द्र में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जैसे लेखकों को रख कर देखने पर साहस और भय भी सताता है कि ''लिख तो डालूं, लेकिन जीवित महाशयों (तथाकथित उच्च समाज) की बिरादरी, अन्ध भक्त बिरादरी का बड़ा भय है। बहुतों के बारे में सत्य प्रकट हो जाये तो उनके यश और जीवन का चिराग ही लुप-लुप करने लगे। कुछ तो मरने मारने पर आमदा हो सकते हैं।''[14] यही है-'उग्र' की यथार्थवादी दृष्टि, जिसे पढ़कर उच्च समाज को अपने खोखलेपन जिंदगी और विचारों को सामूहिक होने का डर महसूस होता है।

वैसे अतियथार्थवादी प्रवृति को सर्वप्रथम स्वीटजरलैंड में 'दादावाद' के नाम से जाना गया। इसे बाद में फ्रांसिसी चिंतन में व्यापक आधार मिला। अतियथार्थवादी प्रवृति को पाश्चात्य और भारतीय मनीषियों ने 'अश्लील साहित्य' ('उग्र' के साहित्य को चॉकलेट पंथी -घासलेटी साहित्य) कह कर पुकारा गया। वहीं दूसरी ओर 'उग्र' पर विवेक एवं संगतिपूर्ण प्रस्तुतिकी परंपराओं को तोड़ने का आरोप भी लगाया गया। प्रेमचंद ने अपने कथा-साहित्य सृजन में जिस आदर्श का लबेदा ओढ़कर प्रगतिशीलता को आगे बढ़ाया था, उसी व्यवस्था का पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने नये ढंग से फोटोग्राफी की है, जिस पर अश्लील साहित्य रचने का दोषरोपण किया जाता है। अब प्रश्न उठता है कि क्या 'उग्र' के सम्पूर्ण लेखन से सिर्फ वासनात्मक उत्प्रेरणा ही होती है या करुणा भाव भी पैदा होता है। वैसे 'उग्र' के लेखन से समाज की घिनौनी करतूतों पर करुणा अवश्य पैदा होती है। यही विचार सन् 1929 में 'यंग इंडिया' में महात्मा गांधी ने व्यक्त किया था। जिसको घासलेटी आंदोलन के मुखिया बनारसीदास चतुर्वेदी ने दबा कर रख लिया था। 'उग्र' के लेखन की महत्ता को डा० मैनेजर पाण्डेय बात ही बात में निम्न रूप में कहते हैं कि 'हम अपनी अच्छाईयों से जितना सीखते हैं, उससे अधिक बुराईयों से। उपर्युक्त कथन से यह तर्क संगत बात निकाली जा सकती है कि 'उग्र' के साहित्य को अश्लील या घासलेटी कहकर नकारा नहीं जा सकता। 'उग्र' ने अपने सम्पूर्ण औपन्यासिक लेखन में हिंदू-मुस्लिम-ईसाई, उच्च-नीच, पुरूष-नारी आदि के बीच उठे समस्त समस्याओं को वैज्ञानिकता प्रदान की है। और जीवन की खुशियों के सपने लिए तमाम नवयुवतियों का वेश्यावृत्ति में ढकेल देने वाले महापापियों के सम्पूर्ण दुश्चक्र को परत-दर-परत उघाड़ कर रख दिया है।

सामाजिक यथार्थ

'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में हाशिए के लोगों की मार्मिक और दिल को दहला देने वाली समस्याओं से जुड़े सवालों को बड़ी गम्भीरता एवं यथार्थ प्रवणता से उठाया गया है। इस उपन्यास में अछूतोद्धार की गांधीवादी प्रवृति को प्रमुखता दी गयी है। भारत में स्वतंत्रता के पूर्व दलितों की समस्या अपने घृणित स्तर पर थी। ऐसे में अछूतोद्धार न कर पाने का मलाल देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू को भी रहा। वे कहते हैं-''मुझे बहुत अफसोस है कि आप लोगों (अछूतों) के हित में जितना कुछ होना चाहिए था, अब तक नहीं हो पाया।'' **15**

जमाना बदला परिस्थितियां बदली और सोचने-समझने के धरातल भी बदल गए, परन्तु एक अछूत एवं नारी के प्रति सकारात्मक विश्वास नहीं बन पाया। 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास की नायिका रधिया है जो अछूत समाज में पली-बढ़ी है। वह सुन्दरता की साक्षात सजीव मूर्ति है, जो किसी राजघराने की शहजादियों से कम नहीं है और न ही किसी परियों-सी कम सौम्य और कोमल है, किंतु है-अछूत समाज की शहजादी। इतनी गुण सम्पन्नता के बावजूद उच्च समाज असलियत को पचा नहीं पाया। रधिया का सिर्फ गुनाह है अछूत घर में पैदा होना यह उसके उपक्रम के बस की बात भी नहीं है। इसके बावजूद अछूत रधिया के प्रति तथाकथित उच्च कहे जाने वाले लोगों के विचार नहीं बदले, तभी तो घनश्याम कहता है-''छोड़ो रधिया भंगिन को। किसी अच्छी चीज की चर्चा चलाओ।''**16** अच्छी वस्तु मानों उच्च समाज द्वारा ही निर्मित होती है। ईश्वर को भी इस उपक्रम से बाहर रखा गया है। इस मानसिकता को 'उग्र' बखूबी पहचानते थे। शायद प्रतिबद्धता की इसी प्रवृति ने 'उग्र' को अछूत समाज के यथार्थ-चित्रण पर कलम चलाने के लिए मजबूर किया।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' साहित्यकार और पत्रकार होने के कारण समाज के प्रति जिम्मदारी को अच्छी तरह पहचानते थे। उन्होंने दायित्वबोध अपने संघर्ष पूर्ण जीवन के कटु अनुभवों से सीखा था। तभी लेखक का 'बुधुआ की बेटी' के संबंध में यह दावा करना कि ''मेरे इस आरम्भिक उपन्यास को पढ़े-श्रद्धालु-विश्वासी बनने के लिए न सही असलियत-सत्य के निकट पहुंचने के लिए ही सही! बस!''**17** अध्ययन करें। यही वजह है कि समाज के सच को व्यक्त करने में 'उग्र' कभी पीछे नहीं रहे और न ही सत्य को झुठलाने का प्रयास किया। जैसा देखा वैसा ही शब्दबद्ध किया।

रूसी कथाकार अंतोन चेखव ने लिखा है कि ''साहित्य की भी अपनी सीमाएं होनी चाहिए।''[18] इस कथन के पीछे कलाकारों की व्यक्तिगत-दृष्टि होती है। चेखव की क्या मंशा थी यह नहीं मालूम। किंतु यह कहा जा सकता है कि लेखक का सृजन-क्षेत्र सम्पूर्ण संसार है। उसमें समाज की अच्छाईयों एवं विद्रूपताओं का बयान करने के लिए पैमाना गढ़ना साहित्य के लिए उचित नहीं है और न ही समाज के लिए। यही वजह है कि 'उग्र' ने हिंदी लेखन की सारी परंपरा को तोड़ा और नये समाज की परिकल्पनाओं के साथ रूढ़िगत समाज से मुक्तिकामी विचार प्रस्तुत किए। 'उग्र' ने इस तरह के वर्णन में साहित्य की कलात्मक शब्दावली के साथ-साथ प्रचलित अभद्र शब्दों को व्यावहारिक जगत से ज्यों का त्यों लाने का पूरा प्रयास किया। इन्हीं तथ्यों के आधार पर 'उग्र' के साहित्य को 'घासलेटी' साहित्य कहकर दुत्कारा गया, जो लेखक की अभिव्यक्ति की आजादी पर कुठाराघात था। जिसे विशेष उपक्रम के अधीन चलाया गया था।

सुन्दरता किसी समाज विशेष की जागीर नहीं है। यह ईश्वर द्वारा बनायी प्रक्रिया है, जिसको कभी अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। किंतु तथाकथित सभ्य समाज को रधिया के अछूत परिवार में अवतरण पर जरूर अफसोस है-''क्या बतलाऊं भाई साहब! न जाने कहां से बुधुआ के घर में पैदा हो गयी।''[19] यह उच्च समाज की अछूतों के प्रति बनी दृष्टि है, जो यह उजागर करती है कि भंगी आखिर रूप-रंग-ढंग सभी तरह से अछूत होता है। उच्च सोच एवं पाक-साफ कहलाने वाला महान समाज कल तक दालमंडी (वाराणसी) के कोठे पर वेश्यावृति करने वाली औरतों की तारीफ में पुल बांधते थे। आज वही भंगीन रधिया को अछूत के घर देखकर भी अपने परंपरागत विचारों को त्याग न सके। यथार्थ-बोध के इन्हीं बिन्दुओं पर पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' आम पाठक को सोचने के लिए मजबूर करते हैं।

हम सभी 21वीं सदी के दहलीज पर खड़े हैं, पर आज भी छुआछूत जैसी भयंकर बीमारी से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाए हैं। दलित और नारी शोषण आज भी बहस का मुद्दा बना हुआ है, क्योंकि वर्तमान समय में सम्पूर्ण विमर्श के केन्द्र में दलित और नारी आ गए हैं। अछूत और नारी शोषण दुलैना गांव-झज्जर, (हरियाणा, 15 अक्टूबर, 2002), चकवाड़ा (जयपुर, सितंबर, 2002), और मुंडामपट्टी (तमिलनाडू, 5 सितंबर, 2002), थिन्नयम गांव (तमिलनाडू, 22 मई 2002) आदि थमा नहीं है। यह देश की त्रासदी है कि भारतीय संविधान मानव मानव में भेद को नकारता है। फिर भी सामाजिक रूप से उच्च कहे जाने वाले संस्कारिक लोगों द्वारा अछूत समस्या को बनाएं रखने में गर्व का अनुभव किया जाता हैं।

इसका स्पष्ट उदाहरण ''तमिलनाडू के गांवों और कस्बों में आसानी से देखा जा सकता है। जहां एक ही दुकान पर अछूतों के लिए अलग वर्तन और उच्च हिन्दुओं के लिए अलग वर्तन का इस्तेमाल किया जाता है।''[20] इसी अछूत जैसी कुत्सित व्यवस्थाओं का बयान पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'बुधुआ की बेटी' में किया है।

'उग्र' अपने सम्पूर्ण उपन्यासों में समाज की विकृतियों को उभार कर करूणा पैदा करने में सफल रहे हैं। इनके लेखन को अश्लील और घासलेटी साहित्य घोषित कर समाज के नग्न यथार्थ-चिंतन को झुठलाया नहीं जा सकता है। 'उग्र' ने लिखा है कि भारतीय समाज के बिगड़ते स्वास्थ्य पर नीरोग प्रकाश डालने की कोशिश मैंने की है, वैसी ही कोशिश मैं जमाने से करता आ रहा हूं। मेरे सभी उपन्यास, उपन्यास कहीं कम और सामाजिक रोगों के एक्स रे फोटो कहीं ज्यादा है।''[21]

फ्रांस में सन 1856 ई० में गुस्ताव प्लावेयर ने प्रसिद्ध उपन्यास 'मार्डन बेवरी' लिखा था। जिससे यथार्थवादी आंदोलन को नई दिशा मिली। उनके इस यथार्थ-बोध के सृजन पर भी पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की तरह अतियथार्थवादी होने का दोषारोपण भी किया गया। 'उग्र' और प्लावेयर दोनों ने अपने समाज की बुराइयों को नंगी आंखों से देखा था, उसे महसूस किया था और बाद में शब्दबद्ध। किया मगर प्रेमचंद की आदर्शवादी चेतना की तरह नहीं, अपितु 'उग्र' ने यथार्थ के साथ-साथ परिवर्तनवादी दृष्टि को प्रश्रय दिया। इसीलिए डा० मैनेजर पाण्डेय को लिखना पड़ा कि '' यथार्थ के अनुभव, चयन, व्याख्या, मूल्यांकन, रूपांतरण और अभिव्यक्ति की प्रक्रिया स्वतः चालित प्रक्रिया नहीं होती। इसमें रचनाकार की विश्व-दृष्टि के साथ-साथ कलादृष्टि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।''[22]

कोई रोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बना रहे, इससे विडम्बना क्या हो सकती है? 'उग्र' ने इसी रोग का आपरेशन अपने उपन्यासों में किया है। वे आजीवन आदर्श के नाम पर यथार्थ पर परदा डालने वालों को कड़ी से कड़ी चुनौती देने का सफल प्रयास करते रहे। यही वजह है कि 'उग्र' के उपन्यासों में तीन-तीन पीढ़ीयों की बुराईयों को दिखाने की पूरजोर कोशिश की गयी है। 'बुधुआ की बेटी' में गुलाब चंद कहता है-''मेरे ही घर की बात लो। भला इस शहर में कौन नहीं जानता कि मेरे दादा मरते-मरते तक किसी न किसी खूब-रू पर मरते रहे।''[23] 'उग्र' इन्हीं संकीर्ण मानसिकता में लिप्त समाज को उबारना चाहते थे। जिसने प्रत्येक अच्छे से अच्छे परिवारों को अपनी चपेट में लेकर असाध्य रोगों की तरह आजीवन छुटकारा पाने से वंचित कर रखा है। इसका इलाज साहित्य और पत्रकारिता के

द्वारा ही सम्भव था। तभी 'उग्र' साहित्यकार एवं पत्रकार दोनों की हैसियत से समाज को बदलने की पूरजोर कोशिश में जीवन पर्यंत लगे रहे।

धार्मिक यथार्थ

सदियों से हिंदू समाज में धार्मिक अनुष्ठानों पर विशेष बल दिया जाता है। इससे अछूत समाज कैसे बच सकता है, उसकी समाज में भी भूत-प्रेत, जिन्न, शैतान आदि का इतना बोलबाला था कि प्रत्येक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक कार्यों में ''अनेक भूतों, प्रेतों और शैतानों का नाम ले-लेकर वर कन्या में प्रेम बने रहने के लिए प्रार्थना''[24] की जाती थी अथवा ''भैया, गाजी मियाँ और शहीह बाबा और ताड़ का जिन्न तेरा भला करेंगे''[25] की अर्चना की जाती थी। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने इन व्यवस्थाओं में पीसते हुए दलित समाज को बारीकी से देखा था। आज भी अछूत समाज इन कुरीतियों से नहीं उबर सका है। 'उग्र' अछूत समाज की समस्याओं के मूल कारणों में अंधविश्वास, कर्मकाण्ड, आडम्बर आदि को प्रमुख मानते रहे। इन्हीं अवैज्ञानिक विचारों में फंसकर दलित समाज विकास की पगडंडी पर नहीं आ सका है। इस नब्ज को 'उग्र' ने पकड़ा और इसे 'बुधुआ की बेटी' में दर्ज किया।

भारत की हिंदू व्यवस्था ने समाज को कई वर्णों में बाँट रखा है। हिंदू समाज में उपेक्षित और वंचित अस्पृश्य लोग आज भी अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष कर रहे हैं। अछूत समाज में भंगी और चमार अपने नीच कार्यो के लिए पहचाने जाते रहे हैं। इस व्यवस्था को बनाए रखने में समाज के ब्राह्मणवादी मानसिकता सक्रिय रही है। 'उग्र' ने लिखा है-''शहर के किसी....पंडित से ब्याह योग्य दिन पूछा जाता था जिसे पण्डित महाराज गंगाजल से धुले हुए कुछ पैसे लेकर और दस-पाँच बार 'दूर रह! दूर रह!! कहकर बता देते थे।''[26] यही है- ब्राह्मण समाज की पोंगापन मानसिकता। जो गंगा जल से ही पवित्रता का अनुभव करता है। वह अछूत समाज की जिंदगी के प्रति दया और करूणा का भाव नहीं रख सकता है, इन्हीं दुर्भावनाओं की वजह से दलित समाज अस्पृश्यता की जिंदगी जीने पर मजबूर होता है। इन सभी दुष्चक्रों को आज का दलित लेखक भलि-भांति जानता है। तभी तो अपना स्पष्ट विचार रखते हुए मराठी विद्वान शरण कुमार लिम्बाले ने लिखा है कि ''हमें सहानुभूति और दया नहीं चाहिए, अधिकार चाहिए।''[27] ब्राह्मणवादी समाज ने दलितों को मंदिरों में जाने से वंचित कर रखा था। अछूतों ने लम्बे प्रतिवाद के बाद कहा ''हमारे लिए देव मंदिरों के द्वार खोल दो। जरूर हमें झाड़ू और टोकरी और विष्टा के साथ मंदिर में न जाने देना; वैसे तो कोई

नहीं जाने पाता था आने पर जब हम नहा-धो और साफ-सुथरे होकर, हिन्दू के नाते, भक्त के नाते, मनुष्य के नाते, भगवान के दर्शन करने जाएं तब हमें अवश्य जाने दिया जाये।''[28] इसके बावजूद भी सभ्य विचारों का दंभ भरने वाले ब्राह्मण समुदाय साफ-सुथरे दलितो के लिए मंदिर प्रवेश से वंचित कर देता है। और कहता है-''गलीज साफ करने वाले पतित देव मंदिरों में जाएंगे। छिः राम भजो, मारे डण्डों खोपड़ी की कलई खोल दी जाएगी। मुंह भुरकुस कर डाला जाएगा।''[29] यही है-सारे दुनिया का यथार्थ। और 'उग्र' के धार्मिक यथार्थ का खुला पन्ना भी।

गांधीवादी चरित्र के रूप में मनुष्यानंद किसी धार्मिक शोषण या कर्मकाण्ड का हिस्सा नहीं है बल्कि अछूत समाज की मर्ज का इलाज उन्हीं की भाषा में बड़ी दृढ़ता के साथ करने का प्रयास करता है। वह कहता है-''मैं तपस्वियों की सन्तान ब्राह्मण हूँ। मैं दूसरों को क्षमा कर स्वयं कष्ट भोगना चाहता हूं।''[30] यह 'उग्र' की वंचित समाज के प्रति प्रतिबद्धता है, जो उनके साहित्य में देखने को मिलता है। इस प्रतिबद्धता को कड़े शब्दों में स्वीकार किया है कि-''अच्छे कलाकारों में, अनजाने की अमित अहंकार होता है जैसे; वैसे ही, बुरों में भी होता है! जो हो.....।''[31]

धर्म के नाम पर समाज में अनेक संस्थाएं हैं। जो दीन-दुखियों एवं गरीब-लाचार व्यक्तियों की सहायता करने का नाटक करती हैं। 'सनातन धर्म' ऐसी ही एक संस्था है, जिसके काले पन्ने को 'उग्र' खोलते हुए कहते हैं-''मगर सनातन धर्म के स्तम्भ से ऐसी आशा करना, पत्थर से तेल निकालना था।''[32] इस प्रकार कुकुरमुत्तों की तरह तमाम सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान हेतु संस्थाएं बनायी जाती रही हैं फिर भी इस देश की त्रासदी है कि भारत की अधिकांश गरीब जनता बिना-दवा-दारू के मरने को विवश है।

नश्वर शरीर समय के अनुसार छोड़कर बेगाना हो जाता है। न जाने कहां चला जाता है-आदमी का प्राण। फिर भी समाज के उच्च लोगों ने अछूतों के प्रति मानवीय संवेदना नहीं रख सका है। अघोड़ी (मनुष्यानंद) कहता है कि ''जरूर बता, मै देखना चाहता हूं, उस व्यक्ति को जो अछूत या भंगी समझकर तुझसे घृणा करता है। तुझे भी सबकी तरह पंच तत्व का पुतला नहीं मानता। तुझमें भी उसी परम्-प्रकाश की एक रेखा नहीं देखता तू चुप है! तू नहीं बताएगा। तू उनसे अधिक साधु या महापुरूष या ऊँचा है, जिन्होंने तुझे इस अखाड़े में नहीं घुसने दिया था।''[33] यहां पर महात्मा गांधी का चरित्र उभरकर सामने आ जाता है। गांधीजी शरीर को नश्वर घोषित कर सम्पूर्ण मानवता को एक ही आत्मा का पर्याय मानते थें

ताकि अछूत लोगों के प्रति भी सकारात्मक दृष्टि पैदा किया जा सके और उन्हें भी समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जाए। यही 'उग्र' के लेखन का गांधीवादी यथार्थ है।

शूद्र समाज देश के अधिकांश हिस्सों में बसे हुए हैं। इनका ब्राह्मणवादी समाज की संस्कृति एवं सभ्यता से गहरा रिश्ता रहा है। मुसलमानी आक्रमण ने देश की सभी व्यवस्थाओं को प्रभावित किया। इसके बाद एक विशेष विचारधारा पनपी, वह यह कि इस देश का मुस्लिम अछूतों की जिंदगी से बिल्कुल अलग स्थान पाया। धर्म के नाम पर गो-मांस खाने वालों के साथ ब्राह्मणों का संबंध अच्छा रहा है परन्तु कौन सा कारण रहा है? जिससे ब्राह्मण समुदाय दलित समाज को मानवीय रूपों में भी देखने का साहस नहीं कर पाया है। 'उग्र' इन विसंगतियों से वाकिफ थे, तभी वे लिखते हैं कि ''और, मुसलमान साईस के साथ अपनी जोड़ी पर बैठकर पान चबाने में तुम्हे घृणा नहीं होती, क्यों? मुसलमान तो गो-मांस खाता है। उसे छूने से तुम्हारा मन क्यों नहीं अपवित्र होता है।''[34] यह धर्म का आडम्बरी रूप है जिसे कबीरदास ने भी मध्यकाल में तथाकथित उच्च समाज के लोगों को चुनौती दी थी। यही 'उग्र' की नजर में धार्मिक पोंगापन का यथार्थ-बोध है। जिसमें अनपढ़ और गरीब जनता रची-बसी है।

आर्थिक यथार्थ

आज भी समाज के छब्बीस करोड़ लोग भूखे नंगे रात काट लेते हैं। उन्हें एक दिन भी नियमित भोजन मयस्सर नहीं होता है। गरीब जनता दो वक्त की रोटी के लिए दिन-रात मेहनत करती हुई गलियों, सड़कों एवं गांवों में दिख जाएगीं। रोग-उपचार को कौन चलाए? प्रतिदिन हजारो इलाज की राह देखते दम तोड़ देते हैं। बुधुआ भी उन्हीं असहाय लोगों में से एक बदनसीब भंगी है-''बुधुआ की झोपड़ी उजड़ गयी! गृहस्थी अगर उसकी उसी गृहस्थी को हम उक्त नाम से पुकार सकें तो-चोपट हो गयी।''[35] अथार्त् बुधुआ की पत्नी पैसे के बिना एक लोक छोड़ कर दूसरे लोक चली गयी। इसमें सभ्रांत डॉक्टरों का ही योगदान रहा है। डॉक्टर बोलते-''तो मरने दे, जा तू भी मर! मैं क्या करूं मैंने दुनियाभर के नीचों की जान का ठेका तो नहीं ले रखा है।''[36] यही हिंदू समाज का सच है। ये ऊँची जाति के फरिश्ते अछूतों की बात नहीं सुनते। 'उग्र' आगे लिखते हैं कि ''उसके अछूत और अन-धन न होने के कारण ही समाज के ऊंची जाति के गुलाम वैद्य और डाक्टरों ने उसकी स्त्री को मृत्यु की राह पर बिना रोके-थामें जाने दिया था।''[37] इन सारे यथार्थों को 'उग्र' बड़ी कुशलता से लिखने का साहस जुटाया था।

समाज का निचला तबका दो-वक्त की रोटी के लिए संघर्ष करता है। और फटे हाल और नारकीय जीवन की तंग गलियों में घास-फुस के आवरण के नीचे अपनी पीढ़ी दर पीढ़ी उम्र गुजार देता है। 'उग्र' दलितों की आर्थिक व्यवस्था पर पैनी नजर रखते थे। उन्होंने समाज के सभ्य लोगों को आर्थिक यथार्थ से परिचित करवाया है। बुधुआ के आर्थिक जीवन का वास्तविक खाका 'उग्र' ने निम्न शब्दों में खिंचा है-''उसकी एक छोटी-सी ताड़ के पतों-फूसों और कहीं-कहीं पुराने खपड़ों से छाई-बनाई झोपड़ी थी।''[38] यही सच्चाई है उन मासूम और गरीब सहारों की, जिसमें जीने के लिए सदियों से विवश किए जाते रहे हैं।

आर्थिक तंगी में जीने के लिए मजबूर करना, अच्छे एवं साफ सुथरे रहना भी अछूत समाज के लिए अभिशाप था। क्योंकि तथाकथित उच्च समाज की मानसिकता इस कदर कुंठिता हो गयी थी कि वे साफ-सुथरे आदमी से परहेज करते थे। 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास के पहली पंचायत शीर्षक में वृद्ध अछूत का कहना कि ''हजूर, हमें तो देहात वाले (उच्च लोग) कुरता पहनने ही नहीं देते। कहते हैं, ससुर भंगी की जात और पहनोगे उच्चों की तरह कुरते! लंगोटी छोड़ घुटने इतनी ऊंची धोती भी पहने, तो हम पर बिना मार और गालियों की वर्षा किए देहाती 'ऊँच पानी न पिएं। ऐसी हालत में अगर हम सफाई से रहना शुरू करेंगे तो लात भी खायेंगे और अपनी लगी-लगायी रोजी से भी हाथ धो बैठेंगे।''[39] यह सोची-समझी बनायी गयी व्यवस्था है। ब्राह्मण समुदाय की घृणित मानसिकता ने अछूतों की जिंदगी में नरक के बीज बोए और उसे स्वयं दलित समाज रूढ़िगत विचारों, धार्मिक कर्मकाण्डों आदि के बल पर जीवित किए हुए हैं। 'बुधुआ कीं बेटी' उपन्यास का एक-एक पन्ना हिंदू समाज की कुटिल मानसिकता को दिखाता है।

आर्थिक शोषण बहुत गहरे स्तर पर 'बुधुआ की बेटी' में दिखायी पडता है। एक और बृद्ध अछूत यह कहता है कि ''मेरी उम्र अस्सी बरस और पांच बरस है। इतने दिनों में मैने दुनिया के उन-उन कष्टों के मुख देखे है, जिनका मैं वर्णन भी नहीं कर सकता। मैंने पेट के लिए दूसरों के गलीज साफ किये, चोरी की, जेल के कष्ट झेले, विविध रोगों का शिकार बना-क्या-क्या नहीं किया इतनेपर भी मुझे बराबर दो महीने तक कभी भरपेट अच्छा भोजन नहीं मिला। आज तक देखिए तो तन पर समूचा कपड़ा नहीं है।''[40] उपर्युक्त कथन सवर्ण समुदाय द्वारा अछूत लोगों के साथ किया गया आर्थिक शोषण का न्यायिक दस्तावेज है, जिसे मनुष्यानंद (महात्मा गांधी का चरित्र) जैसे अछूतोद्धारक के सामने एक-एक करके अछूत लोग अपने जीवन के कटू अनुभव को निःसंकोच भाव से पेश करते हैं। 'उग्र' के अछूत

समाज के प्रति दायित्वबोध ने 'बुधुआ की बेटी' जैसे उपन्यासों के सृजन हेतु प्रेरित किया। 'उग्र' के आर्थिक चिंतन का यही यथार्थ है, जिससे स्वयं लेखक भी जुझा है। 'उग्र' के सम्पूर्ण जीवन की त्रासदी एवं बचपन के तंगी दिनों की विपदाओं ने इस कदर झकझोर दिया कि उन्हें आर्थिक शोषण की प्रत्येक गतिविधियों को परत-दर-परत उघार कर रखने में जरा भी संकोच नहीं हुआ।

राजनीतिक यथार्थ

अपाहिजों में 'स्व' के गौरव का भान करा दिया जाए तो वह भी शेर की तरह दहाड़ने की कुब्बत रखता है। मनुष्यानंद ने अछूतों के दिलो में आत्म सम्मान जगाकर राजनीतिक विद्रोह का झण्डा उठाने के लिए प्रेरित किया-''अब बहुत दिन हो गये तुम अपनी ऊँचों को हम पर जुल्म करते हुए। अब हम भी, अपने को चीन्हनें (पहचानने) लगे हैं। अब समाज की मशीन प्रेम और सहयोग से ही चलाने से चलेगी, भय और शासन और अत्याचार से नहीं।''[41] यह गांधीवादी विचारों की देन है, जिसमें मनुष्यानंद जैसे लोग अपने समाज के कमजोर से कमजोर लोगों के प्रति हमदर्दी एवं उनकी प्रत्येक मोड़ पर वकालत करके संघर्ष शक्ति का बिगुल बजवाते हैं।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के राजनीतिक चिंतन में मुक्ति के अनेक मार्ग दिखाई देते हैं। आज अस्मितावादी विमर्श में उन्हीं समानता, बंधुत्व, भाईचारा, न्यायिक अधिकार की बात उठायी जा रही है, जिसको 'उग्र' ने आज से 75 वर्ष पहले महसूस किया था। 'उग्र' की दूर-दृष्टि और अछूतों के प्रति सहयोग की प्रबल इच्छा ने नये द्वार खोले ''तुम्हारे असंख्य कष्ट ही हैं। मैं जी-जान से चाहता हूं कि तुमलोग अपने वर्तमान जीवन से छुटकारा पाओ। मगर, इन कष्टों से तुम्हारा उद्धार तब तक नहीं हो सकता जब तक तुम स्वयं अपने पापों से युद्ध करने को तैयार न हो जाओ।''[42] 'उग्र' दलित समाज को स्वावलंबी बनाने के लिए दो कारको को गिनाया है। पहला वह जिसे स्वयं प्रत्येक मनुष्य ने पाल रखा है जिनमें गंदे तरीके से रहना, चोरी करना, शराब पीना, गंदा साफ करना, मरे हुए जानवर छिलना और मांस खाना आदि प्रमुख हैं। इन सभी से मुक्त हुए बिना अछूत समाज का उद्धार नहीं संभव है। दूसरे कारक को भी 'उग्र' ने बड़ी कुशलता से व्यक्त किया है। वे लिखते हैं-''मेरे भाइयों! अब तुम्हें इन बातों (आपसी मतभेदों और गंदी संस्कृति) से दूर रहकर दलबद्ध होना चाहिए नहीं तो, ये ऊँची जात वाले, जीवन भर तुम्हे गुलाम और नरक के कीड़े ही बनाए

रखेंगे।''[43] 'उग्र' के इन सभी विचारों को दलित जनता आज भी बड़ी स्पष्टवादिता से सुन रही है, समझ रही हैं तभी तो अछूत कहते हैं-''हम चोरी छोड़ देंगे, राम दोहाई हम शराब, गांजा, ताड़ी बगैरह भी न छूएगें, लड़े-झगड़ेंगे भी नहीं, साफ और एक होकर रहेंगे-दोहाई औघड़ बाबा की! हमारा उद्धार कीजिए। हमें नरक से निकालिए।''[44] इस तरह से सदियों से वंचित समाज स्वावलंबी बनने का व्रत करता है मगर उद्धार महात्मा गांधी के वैचारिक आंदोलन पर ही हो सकता है। इसको डा० भीम राव अम्बेडकर ने अस्वीकार कर दिया था। क्योंकि गांधीवादी विचार वर्ण-व्यवस्था से निकलने की चेष्टा नहीं करता है। आज के दलित चिंतक गांधीवादी विचार को भले ही नजर अंदाज कर दे, किंतु प्रारंभिक प्रयास के ऐतिहासिक पन्नों में महात्मा गांधी ही मुख्य रूप से देखे जा सकते हैं। इसके बावजूद मनुष्यानंद (गांधी चरित्र) दलितों को, विद्रोही तेवर के लिए, उच्च समाज के लोगों के होश ठिकाने लगाने के लिए प्रेरित करता है-''ज्योंही तुम संघबद्ध होकर काम करोगे त्यों ही समाज तुम्हारे सामने झुक जाएगा। लोग समझने लगेंगे कि तुम्हारा भी कोई अस्तित्व और आवश्यक अस्तित्व है।''[45] भारतीय समाज में स्त्री की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। फिर भी पुरूषवादी समाज ने नारी को अपने समानान्तर संघर्ष भूमि से वंचित करने का कुचक्र एवं पुरूष होने का दम्भ भी दिखाया है। 'उग्र' के नारी पात्रों का बड़े आत्मविश्वास के साथ यह कहलवाना कि ''बिल्कुल सत्य है...जरूर आंदोलन होगा, मगर अभी उसकी तैयारी चल रही है। हमारी जाति और परिस्थिति के लोग, अघोड़ी बाबा कहते थे, इतने 'बैकवर्ड' हैं कि वह कोई आंदोलन अत्याचारियों के खिलाफ दृढ़ता से जल्द चला ही नहीं सकते।''[46] आज ऐसी बात नहीं है, वक्त के थपेड़ों ने दलितों की आंखे खोल दी हैं। उन्हें इस लायक तैयार कर दिया है कि शोषकों के विरूद्ध बहुत बड़ा आंदोलन खड़ा कर सके और उन्हें मजबूर कर सकते हैं कि ''हमारी (अछूतों की) तनख्वाह बढ़ाओ, म्युनिसिपैलटी सरकार और समाज से लड़ कर महल नहीं तो साफ-सुथरी, मिट्टी-फूस की झोपड़ी ही का प्रबंध हमारे रहने के लिए कराओं, अगर एक महीने के अंदर उक्त बातों का संतोषजनक फैसला नहीं हुआ तो, हम सब, एक स्वर में हड़ताल बोल देंगे।''[47]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के समस्त यथार्थ-चिंतन में दलितों की अंगड़ाई का ओजस्वी स्वर व्यापक स्तर पर जगह पाया है। ये अछूत धार्मिक कुरीतियों, आर्थिक शोषण, सांस्कृतिक दोहन, मंदिरों में जाने की वंचना, राजनैतिक आंदोलन के विभिन्न रूप और उस समस्त तंत्र के विरूद्ध बगावत का बिगुल बजाना चाहते है, जो उन्हें उनके अधिकार से वंचित करना

चाहते हैं। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने आने वाली सामयिक आहट को मंभीरता से महसूस किया था। आनेवाली दूर-दृष्टि को भापते हुए 'उग्र' ने लिखा-''अब पतितों और मजदूरों और अछूतों का युग आ रहा है अब, समाज की मशीन को शुद्ध-रूप से चलती रहने देने के लिए पुरानी आदतों और प्रणालियों में रद्दोबदल करना होगा।...शहर के अनेक शरीफ युवक योगीराज मनुष्यानंद भी अछूतों, भंगियों की मदद पर हैं। अब यह सुधार-धारा दंडों और जबरदस्तियों से न रूक सकेगी।'' [48] यही वक्त की मांग थी और समय की पुकार भी। क्योंकि यदि संघर्ष का धरातल बेकाबू हो गया तो शोषण-तंत्र नेस्ताबूत हो जाएगा। मगर दुख इस बात का है कि देश की आजादीके 55 वर्षो के बाद भी शोषणमुक्त समाज नहीं गढ़ा जा सका है।

संदर्भ-सूची

१. त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद - पृष्ठ संख्या-३
२. त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद - पृष्ठ संख्या-१३
३. रामदरश मिश्र - हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा - पृष्ठ संख्या-२६
४. मैनेजर पाण्डेय - शब्द और कर्म - पृष्ठ संख्या-२०
५. वही - पृष्ठ संख्या-२४
६. श्रीशरण (संपादक) - विश्व सूक्ति कोश - खण्ड दो- पृष्ठ संख्या-३०१
७. प्रेमचंद - साहित्य का उद्देश्य -पृष्ठ संख्या-१३
८. मैनेजर पाण्डेय - साहित्य और इतिहास - दृष्टि -(भूमिका) -पृष्ठ संख्या-५
९. प्रेमचंद - सहित्य का उद्देश्य - पृष्ठ संख्या-२२
१०. मैनेजर पाण्डेय - शब्द और कर्म - पृष्ठ संख्या-२५
११. 'उग्र'- बुधुआ की बेटी -पृष्ठ संख्या-ग
१२. अपनी खबर - पृष्ठ संख्या-११
१३. रॉल्फ फॉक्स - उपन्यास और लोक जीवन - पृष्ठ संख्या-३३
१४. 'उग्र' - अपनी खबर - पृष्ठ संख्या-६
१५. 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-ग
१६. वही - पृष्ठ संख्या-१
१७. वही - पृष्ठ संख्या-घ
१८. न्यू वर्ल्ड लिटरेचर सीरीज - ११७ - कथा साहित्य ७ पृष्ठ संख्या-४३
१९. 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२
२०. राष्टीय सहारा - २४ नवम्बर २००२
२१. 'उग्र' - कढ़ी में कोयला - पृष्ठ संख्या-७
२२. मैनेजर पाण्डेय - शब्द और कर्म- पृष्ठ संख्या-२५
२३. 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-४
२४. वही - पृष्ठ संख्या-६
२५. वही - पृष्ठ संख्या-६
२६. वही - पृष्ठ संख्या-६
२७. 'हंस' - दिसम्बर १९९५ - पृष्ठ संख्या-३३
२८. 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१५५
२९. वही....पृष्ठ संख्या-१५६
३०. वही.....पृष्ठ संख्या-२६
३१. वही .....पृष्ठ संख्या-ग
३२. वही.....पृष्ठ संख्या-८
३३. वही.....पृष्ठ संख्या-३५
३४. वही.....पृष्ठ संख्या-३६
३५. वही.....पृष्ठ संख्या-९
३६. वही....पृष्ठ संख्या-९
३७. वही....पृष्ठ संख्या-१६

३८. वही .....पृष्ठ संख्या-६
३९. वही.....पृष्ठ संख्या-१४२
४०. वही.....पृष्ठ संख्या-१४५
४१. वही.....पृष्ठ संख्या-१४२
४२. वही.....पृष्ठ संख्या-१४७
४३. वही.....पृष्ठ संख्या-१४७
४४. वही.....पृष्ठ संख्या-१४८
४५. वही .... पृष्ठ संख्या-१४७
४६. वही ....पृष्ठ संख्या-१५२
४७. वही.....पृष्ठ संख्या-१५५
४८. वही....पृष्ठ संख्या-१५६

अध्यायः तीन

'बुधुआ की बेटी' में चित्रित समाज

- भागीदारी से वंचित समाज
- परंपरागत समाज
- आधुनिक समाज
- ईसाई समाज
- हिंदू समाज
- अछूत समाज

समाज मूलतः एक संबंध मूलक 'संकल्पना'[1] है। समाज की सबसे छोटी ईकाई मनुष्य है। कुछ चिंतकों ने मनुष्य और समाज की उत्पत्ति को लेकर मतभेद पैदा किया है, जैसे 'मनुष्य का जन्म समाज से पहले हुआ या नही'। मगर इसकी स्वीकारोक्ति नहीं मिल सकी है, क्योंकि समाजिकता का जन्म मनुष्य के साथ ही हुआ। जब मनुष्य ने दूसरे मनुष्यों के साथ जन्म लिया, तो समाज एक वास्तविकता के रूप में विद्यमान था। इसीलिए स्पष्ट रूप से यह कहना उचित लगता है 'मनुष्य समाज के अन्दर ही मनुष्य है, समाज से बाहर नहीं।'

समाज की अवधारणा को लेकर किसी ठोस पारिभाषिक अवस्था तक पहुंच पाना बड़ा मुश्किल है। क्योंकि समाज एक तात्विक संकल्पना नहीं है। ताकि उसके वस्तुगत यथार्थ का पता चलता हो अपितु इससे सामाजिक संबंधों का ज्ञान होता है। जब व्यक्ति आपस में सुसंगठित एवं सुपरिचित ढंग से संबंद्ध होते है तो यह सामाजिक संबंधों की संस्थाएं (परिवार, विवाह, नातेदारी) बन जाती है। आज के युग में व्यक्ति मुख्य रूप से परम्परागत और आधुनिक समाज के रूप में बंटा हुआ है। परम्परागत समाज 'दैविय उत्पत्ति का सिद्धांत (Divine Drigin Theory) को वैधता प्रदान करता है। जो समाज को ईश्वरीय कृति के रूप में स्वीकारते हैं। परम्परागत समाज में संस्कार, रीतिरिवाज, सामूहिकता, सामुदायिक, स्थायित्व, यथास्थिति तथा सरल श्रम विभाजन प्रमुख है। दूसरी तरफ आधुनिक समाज में धर्मनिरपेक्ष भौतिकवादी संस्कृति का उदय, समाज विज्ञान का उदय, तर्क और विवेक पर बल, प्रगति में विश्वास, विकास के लिए सरकार और राज्य को आवश्यक मानना, आर्थिक विकास और जटिल श्रम विभाजन, मानव को प्रकृति और पर्यावरण पर नियंत्रण करने योग्य देखना और जगत को विरोधाभास रूप में स्वीकारना प्रमुख रूप से गिनाया जा सकता है। यही वजह है कि स्पेंसर तथा दुखाईम जैसे समाजशास्त्री समाजों का वर्गीकरण उनके आकार-माप, और अन्य तथ्यों जैसे श्रम के विभाजन की श्रेणी तथा मात्रा राजनीतिक संगठन एवं सामाजिक स्तरीकरण के आधार पर करते हैं। वही मार्क्स जैसे विद्वान समाज का वर्गीकरण आर्थिक संस्थाओं के आधार पर करते हैं।

समाज समूह, संघ, सभा। अर्थात वह संस्था जो बहुत से लोगों ने एक साथ मिलकर किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्थापित की हो। उसे ही समाज की संज्ञा दी जाती है। मैकाइवर एवं पेज के शब्दों मे-''समाज परिस्थितियों, कार्यविधियों, सत्ता के पारस्परिक सहयोग अनेक समूहों एवं श्रेणियों,मानवीय व्यवहार के नियंत्रणों तथा स्वतंत्रताओं की एक व्यवस्था है।''[2] उपर्युक्त लेखन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि समाज का वर्गीय आधार परम्परागत और आधुनिक दो रूपों में ही दिखायी देता है। परन्तु जब हम 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास के संदर्भ में बात करते हैं तो पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' चार प्रकार के समाजों का चित्रण किया है-

१ हिन्दु समाज

२ मुस्लिम समाज

३ ईसाई समाज

४ अछूत समाज

साहित्य समाज की प्रत्येक गतिविधियों एवं धटनाओं से उत्प्रेरित होता है। इसीलिए 'साहित्य को सामाजिक प्रेरणा का शास्त्र भी कहते हैं। आधुनिक समाज में रहकर परंपरागत ढांचे पर विवेचनात्मक टिप्पणी करना आसान सा हो गया है । आज संगठित समाज (परंपरागत समाज) के विमर्श के केन्द्र में प्रमुखतः दलित और नारी है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास संबंधी, सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को ध्यान में रखते हुए लिखा है कि-''जबतक तथाकथित अछूतों का सम्यक सुधार-उद्धार-जो भी कहिए, नहीं हो जाता, तब तक, 'बुधुआ की बेटी' (मनुष्यानन्द) का विषय और उद्देश्य आवश्यक आकर्षक बराबर बना ही रहेगा।''[3] अछूतों के प्रति नकारात्मक स्वभाव सदियों से हिन्दू समाज के लोगों की मानसिकता अछूतो के प्रति नकारात्मक रही है। यही वजह है कि उपन्यास की नायिका रधिया का दलित परिवार में पैदा होना उच्च समाज के लोगों को पचता नहीं है। मगर तथाकथित उच्च समाज के लिए गर्व की बात हो सकती है यदि स्वयं ब्राह्मण समाज की अपनी प्रिय वस्तु बन गयी हो। उग्र इन सभी उच्च कहलाने वाले लोगों के गलत इरादों को नंगा करके दिखाते हैं - '' न जाने कहां से वह बुधुआ के घर में पैदा हो गयी, राजा-रईस, ब्राह्मण- क्षत्रिय, ईसाई-मुसलमान कोई भी राधिया सी सुन्दर लड़की अपने घर में देखकर मारे गर्व और प्रसन्नता के फुल उठाता''[4]

भागीदारी से वंचित

वर्षों से अछूत समाज समस्त भागीदारियों से वंचित किया जाता रहा है। इसमें हिन्दू-मुस्लिम दोनों ने दलितों को सभी स्तर से प्रताड़ित करता रहा है, ईसाई थोड़ा कम। क्योंकि ईसाई धर्म के प्रचारकों ने हाशिए के लोगों को विकास की मुख्यधारा से जोड़ने के विभिन्न आयामों से दलितों को सुसज्जित करते रहे हैं। वे कहते हैं कि ''हम ईसाई आपके अछूतों का उद्धार ही कर रहे हैं । हम उनसे नफरत नहीं करते, हम उन्हें छूते है, पढ़ाते-लिखाते है समाज और शहर से बाहर रहने वाले जंगलियों कल श्रेणी से उठाकर मनुष्य बनाते है।''[5]

हमेशा से हिन्दू-मुसमानों का इरादा दलित-नारी के प्रति नेक नहीं रहा है। यदि ऐसा नहीं होता तो प्रसिद्ध दलित लेखक मोहनदास नेमिशराय को यह न लिखना पड़ता कि ''दंगे भड़काने पर मुसलमान हमें हिन्दू समझकर मारते हैं और जब कर्फ्यु नहीं होता, तो हिन्दू चमार(अछूत) समझकर अपमानित करते हैं''[6] 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में अछूत समाज का नग्न चेहरा दिखाया गया है। 'उग्र' निम्न समाज की जिन्दगी का नायाब हिस्सा उसकी आर्थिक तंगी को मानते थे। जिसके पास--''एक छोटी-सी ताड़ के पत्तों-फुसों और कहीं-कहीं पुराने खपड़ों से छाई-बनाई झोपड़ी थीं।''[7] और खाने के लिए मोटे दाने की रोटी वह भी इच्छा भर कभी मयस्सर नही होती-''चार दिन से मैंने एक दाना भी नहीं छुआ है। मेरा अब कोई लेवा नहीं । दुनिया भर का गलीज फेंकने का यह पुरस्कार मुझे मिला हैआज मुझ सा दुःखी कोई नहीं! मुझे मौत भी नहीं पूछती न हीं छुती ऐसा अछूत हूं।''[8] दूसरी तरफ हिन्दू समाज के मठाधीश हैं जों अछूतो द्वारा दिए गए पैसे को गंगा जल से पवित्र करके ग्रहण करते है। यही हिन्दू समाज की अंधी दुनिया है। जिसमें तथाकथित ब्राह्मणवादी लोग वर्ण एवं जाति व्यवस्था के नाम पर शोषण एवं घृणित प्रवृति को बनाए रखने में प्रतिष्ठा का अनुभव करते रहे हैं।

परम्परागत समाज

'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में परम्परागत और आधुनिक समाज में टकराव को स्पष्ट तौर से दिखाया गया है। पुराना समाज नैतिकता और आदर्शवाद का नकाब लगाकर नई पीढ़ी को निर्देशित करना चाहता है। जिसमें आज भी मान-मर्यादा का बोलबाला है। ऐसे ही

वक्तव्य बलराम जैसे पात्रों का है- ''मैं यह बर्दास्त कर सकता हूं। कि तुम एक ही जगह चार स्त्रियों को व्याह कर अपने घर रखो मगर मैं यह नहीं बर्दाश्त कर सकता कि तुम कुत्तों की तरह गली-गली औरतों की जवानी सुंघते फिरो। यह आदमियत नहीं कोरा जानवरपन है।''[9] वहीं नई पीढ़ी किसी भी बात की परवाह किए बगैर आधुनिक युग की चकाचौंध जिन्दगी में खुला जीना चाहती है। नयी पीढ़ी बिना लागलपेट के अपनी बात रखना चाहती है, और उनमुक्त भाव से विचरण करना चाहती है। युवा पीढ़ी पैसे के बल पर इज्जत, मान-मर्यादा एवं भौतिक सुख-संसाधन का उपभोग करना चाहती है। 'उग्र' अछूत समाज को एहसास दिलाना चाहते थे कि आज का समय पैसे वालों का है। रूपये के बल पर ब्राह्मण डॉक्टर को अछूत के घर इलाज के लिए भी बुलाया जा सकता है। 'उग्र' बुधुआ जैसे गरीब पात्र से कहलवाते हैं कि-''पैसे इकट्ठा करता हूं पैसे वाला बनना है क्योंकि यह जमाना पैसे का है, जिसके पास पैसे नहीं, वह भगवान की तरह सुन्दर,पवित्र और गुनी होने पर भी फिजुल आदमी है। दुनिया उसका निरादर ही करेगी। और पैसे होने पर भंगी भी भगवान से बड़ा समझा जाता है।''[10]

पुराने जमाने से लेकर भारत की आजादी तक सार्वजनिक स्थलों पर अछूतों का जाना वर्जित रहा है। हालांकि आज भी देश के कुछ हिस्सों (जैसे-आंध्र-प्रदेश,तमिलनाडु) में दलितों को सार्वजनिक स्थलों पर जाना मनाही है। डॉ भीम राव अम्बेडकर को भी भंगी होने के कारण तमाम स्थलों पर न जाने का दंश झेलना पड़ा था। अछूतों को रास्ते चलते समय गले में घटी और कमर में झाड़ू बांध दिया जाता था। सार्वजनिक स्थलों पर पैर रखते ही लाठी-डंडों की मार झेलनी पड़ती थी। भंगी बुधुआ के साथ भी यही होता रहा है-'' मठ के भीतर से अमीरों के पक्षपाती और नौकर बुधुआ भंगी को छड़ियों और डण्डों के सहारे बाहर खदेड़ते दिखायी पड़े।''[11]

अघोड़ी मनुष्यानन्द शोषणवादी समाज की नस-नस को पहचानता है। उसका कहना है ''उच्च समाज हजार तरह की बेईमानी से रूपये बटोरता है। गरीबों के गले बे-रहमी से काटकर अघोड़ी को अपनी दानशीलता दिखाने आया था।''[12] साहूकारों और सामंतो की सांठ-गांठ से सूदखोरी और मुनाफा संबंधी शोषणवादी प्रवृति प्रेमचंद के साहित्य में भी मिलता है। 'गोदान' इसका जीता जागता दस्तावेज है। इस प्रवृति का उल्लेख कर पाने में पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र कैसे बच सकते थे। उन्होने सूदखोरी के बारे में लिखा है कि-''सुना नही है-बाढ़ेपूत पित के धरमा आया था। मगर तु क्या धरम करता है? किसी मुसीबत चढ़े

को कभी चार रूपये कर्ज देता है तो पन्द्रह वसूल करता है। छोड़ इस कमीनी आदत को। रूपये का सदुपयोग समाज के गरीबों की भलाई करने में है। अर्थ पिशाच की तरह सूद लेना बनकर।''[13] मनुष्यानंद आगे कहता है कि ''दुनिया में सबकी विपदा को बराबर समझनी चाहिए।''[14] इसी विचार को हिन्दुस्तान के कोने-कोने में महात्मा गांधी ने भी पहुंचाने का प्रयास किया था। जिसका प्रभाव उग्र कृत 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में देखने को मिलता है।

समाज में ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो धर्माडंबर के नाम पर भोली भाली औरतो को नरक में ढकेल देते हैं लियाकत हुसैन जैसे लोग फकीरी और कर्मकाण्ड के नाम पर मजार को वेश्यालय बना रखा है। वह जीवन के अंतिम पड़ाव में घृणित कर्म का भागी बन बैठा है। वह कहता कि ''सब कुछ कर थकने के बाद अब यही-औरतो को बच्चा देने का काम मुझे ज्यादा पसंद आया है। पहले मेरे पास महीने में दो-ढाई सौ औरतें बच्चा पाने के लिए आती थीं, वहा अब इस गुजरे जमाने में भी कोई सौ-सवा सौ औरतें आती ही हैं। इतना भी बहुत है''[15]

प्राचीन काल से ही बनारस में वेश्यावृति होती रही है। यह कोई नयी बात नहीं है बल्कि इन कुकर्मो की व्यापकता भी थी। रहमान जैसे व्यापारी इसका बयान निम्न शब्दों में करते हैं-''मुझे मालुम है, लखनऊ में मेरा एक दोस्त ठीक यही रोजगार करता है। तुम तो बुढ्ढे हो चले, वह खुब जवान और तन्दुरूस्त है। उसने हजारों हिन्दू औरतों को बच्चे दिये हैं। वह सारे शहर की औरतों में मशहूर है। उसने कई हजार रूपये इस रोजगार से पैदा किये हैं।''[16]

देह व्यापार का काला धन्धा केवल मुस्लिम समाज के धार्मिक स्थलों के साथ-साथ हिन्दुओं के मठों-मंदिरों के पीछे भी यह काले कारनामें चलाए जाते थे। लियाकत हुसैन कहता है-''अजी मियां रहमान, तुम नहीं जानते, इन हिन्दूओं के मन्दिरों के फाटक पर पंद्रह - बीस हदसे हद तीस दिनों तक हाजिरी देकर एक न एक हर को अपना बगलगीर कर सकता है। उफ कसम खुदा की । गजब की भोली होती हैं हिन्दूओं की औरतें। देवता, पीर, भुत और जिन्न के नाम सुनते ही कांपने लगती हैं।''[17]

हिन्दू समाज में पितृसत्तामक विचार सदियों से चलता आ रहा है। इन्हीं कारणों से पुरूष या औरतें दोनों पुत्र प्राप्ति के लिए ललचायी नजर रखते थे। अछुत समाज भी वंश

परंपरा को चलाए रखने के वास्ते धार्मिक अंध विश्वासों का सहारा लेते थे। पैरंपरागत समाज में पुत्री का जन्म लेना अशुभ माना जाता था।सुकली का कथन उपर्युक्त बातों की पुष्टि करता है- ''मैंने इस मुंह झांसी (राधिया) को किससे मांगा था जो इसने मुझे नौ महीने तक हलाल किया। मैं तो बेटा चाहती थी- मैं तो पूत चाहती हूं।''[18]

पुरुषवादी समाज में औरत का कई दिनो तक घर से बाहर रहना बदनामी का प्रतीक माना जाता है। इस विचार धारा से अछुत समाज कैसे वंचित रह सकता है? सुकली पुत्र की आस में घरवार छोड़ कर चली जाती है। यह जानकर मुहल्ले की दूसरी भंगीन कहती है-''ऐसी कलाबाज मेहराल मेरी कोख की छोकरी ऐसी बदमाश होती तो, मैं-दोहाई सहीद बाबा की! ओझा से बान फेंकवाकर उसकी छाती फड़वा डालती।''[19]

समाज में हमेशा किसी न किसी घटना को लेकर अफवाहें उठती रहती है। सुकली को लेकर दुर्गाकुण्ड (बनारस) की गलियों में अफवाहें गरम हैं। कोई कहता है- ''मुसलमान, उस हिन्दु की बहिन जो विधवा है उढार लाया था। हिन्दू ऊँची जाति का है-शायद क्षत्रिय है। वस, इसीलिए धोर अपमान और क्रोध से उसने उस दढ़ियाल को खपा दिया।''[20] इस कथन से ऐसा लगता है कि अछूत समाज गलत विचारों का प्रतिवाद नहीं करता बल्कि उच्च समाज में ही प्रतिशोध भावना होती हैं।

आधुनिक समाजः

पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र ने अपने समय में न्यायिक और पुलिस व्यवस्था को फेल होते देखा था। उसका एहसास भी था। ''कायरों की तरह अदालत और पुलिस का मुह जोहना नीचता है। पक्षियों को देखो पशुओं को देखो ----- अपने अपमान का बदला स्वयं लेते है।''[21] पुरुषवादी समाज में स्वाभिमान का हमेशा से बोलबाला रहा है। मगर पुरूष मानसिकता को चुनौती देने के लिए तैयार है। मिसेज यंग कहती है-''अब वह दिन दूर नहीं है जब स्त्रियां पुरूषों से पग पग पर समान अधिकार मांगेगी, यदि पुरूष विवाहित और अविवाहित दोनों ही अवस्थाओं में अपने को अपनी झकों का दास समझेंगे, तो स्त्रियां भी पीछे न रहेंगी।''[22]

आधुनिक समाज महिलाओं को पुरुष के समान अधिकारों से लैस करने का पक्षधर है। क्योंकि अब नारी की सम्पूर्ण क्षमता पर उँगली नहीं उठा सकता है। महिलाएं चाहती

हैं-''दोनों (पुरुष-महिला) को दोनों का बराबर ख्याल रखना होगा। नहीं तो, दोनों अपने-अपने स्थान से गिरेंगे और जरूर गिरेंगे। एक बार क्रांति होगी, प्रलय होगा, तभी अपने को जबरदस्त समझने वालों की आंखे खुलेंगी।''[23]

आडंबर और कर्मकाण्डी जीवन व्यतीत करने वाला समाज ईश्वर के मंदिर में भी भयाक्रांत होता रहा है। ऐसा समाज हिंदू-मुस्लिम-सिख-इसाई आदि सभी में देखने को मिलती है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' इन्हीं व्याधियों के तरफ संकेत करते हुए ईसाई मत के अनुयायियों से पिस्तौल और चर्च (ईसाई पूजाघर) की नीति को दिखाने का प्रयास किया है। वे लिखते हैं-''क्या आप लोग (ईसाई पूजाघर) की नीति को दिखाने का प्रयास किया है। वे लिखते हैं-''क्या आप लोग (ईसाई समाज) प्रार्थना-मंदिर में भी नाश के उस भयानक यंत्र को लेकर जाते हैं? ईश्वर की दया पर इतना विश्वास! अच्छा, अच्छा''[24]

एक वह भी समाज हमारे सामने खड़ा था, जिसमें ''महात्मा ईसा को चोरों के बीच में, कांटों के ताज से आभूषित कर क्रूस पर चढ़ाए दिखाए गये थे।''[25] पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' को धर्म के नाम पर, सांस्कृतिक गतिविधियों के नाम पर, सामाजिक मर्यादाओं आदि के नाम पर होने वाले नारी-शोषण की अतल गहराईयों का एहसास था। उन्होंने धार्मिक समाज की कालगुजारियों एवं काले पंजों को अच्छी तरीके से पहचाना था। उन्हें प्रगतिशील और नारी को स्वतंत्रता प्रदान करने वाले यूरोपीय मठाधीशों पर भी विश्वास नहीं रह गया था। उनका कहना था कि ''इन चर्चो और पादरियों ने स्त्रियों को और भी परतंत्र कर रखा है। धर्माध्यक्षों की अधिकार व्यवस्थाएं बलियो अथवा पुरुषों के पक्ष में होती हैं। स्त्री जाति की जागृति के लिए इन धार्मिक संस्थाओं और पदों का नाश होना भी बहुत आवश्यक है।''[26]

भारतीय समाज के साथ-साथ सम्पूर्ण विश्व में नारी-शोषण के चेहरे में एकरूपता देखने को मिलती है। अधिकांश समाज नारी को परित्यक्त बनाकर व्यभिचारी के अनेक रूप तय किए हुए हैं। इन्हीं प्रवृतियों को पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जेसे तेजस्वी लेखक उजागर करने में पीछे नहीं रहे हैं। वे लिखते हैं-''किसी भी कारण जो कोई भी अपनी स्त्री का त्याग करता है, वह उसे व्यभिचारिणी बनाता है। और फिर, जो कोई भी उससे विवाह करता है-व्यभिचार करता है''[27]

किसी भी समाज में सभ्रांत या धर्म के मुखिया से समाज और धर्म दोनों के प्रति

अपेक्षाएं होती है। मुखिया के आचरण और विचार, पर समाज की गति को भी परखा जा सकता हैः परन्तु मठाधीशों का अपेक्षा के अनुरूप व्यवहार न होना, समाज या राज्य की वहीं दशा होती है जैसे ''अंधे राजा की प्रजा कहां तक देखे'' [28] यही वजह है कि मनुष्यानंद (अघोड़ी) ईसाई पादरी जानसन को कहता है कि''सच्चे ईसाई की तरह व्यवहार करो। ध र्माध्यक्ष होकर जब तुम्हीं अपने धर्म और व्यवस्थाओं के विरूद्ध आचरण करोगे तब तुम्हारे अनुगामियों की क्या दशा होगी?''[29]

यूरोपीय समाज के काले इतिहास का चित्रण भी 'उग्र' नें किया है। जिसमें गोरे-काले समाज की विभेदवादी प्रवृति आज तक चली आ रही है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने लिखा है कि-''गोरों के मन में कालों के विरुद्ध जो अकड़ होती है, वह अभी बाकी थी''[30] यही स्थिति भारतीय संदर्भ में भी देखी जा सकती है। भारत के जातिवादी पंजे में अस्पृश्य समाज को घसीटा जाता रहा है। उन्हें भी हे-दृष्टि से देखा जाता है। आज भी बाह्मणवादी समाज अस्पृश्यता की नीति से उबर नहीं सका है। तभी तो रधिया भंगिन के पालनहार के लिए हिंदू समाज के सभी दरवाजों को खटखटाते अघोड़ी थक गया, परन्तु सिर छुपाने के वास्ते शरण नहीं मिल सका-''मैंने यहां के अनेक हिंदूओं, से जिनके पास पैसे और हृदय थे, इस बच्ची को आश्रय देने का आग्रह किया, किसी-किसी से तो, अपनी प्रकृति की विरुद्ध, मैंने प्रार्थना भी की, लेकिन उनमें से एक भी न पसीजा। इस शहर का एक भी हिंदू बुधुआ भंगी की इस अनाथ बालिका को पालने के लिए तैयार न हुआ। यद्यपि यहां पर ऐसे-ऐसे अनेक हिंदू हैं जिनके यहां कुत्ते भी पले हैं-और एक नहीं अनेक। भंगी समाज मैला ही फेंकने के कारण पपित हैं-और उसी मैले को खाने वाला कुत्ता शुद्ध है।''[31] कोई मिलता कैसे? रधिया उच्च समाज की बच्ची तो थी नहीं-क्योंकि ''अजी आश्रय देने वालों की कमी नही....बशर्त्ते कि किसी ऊँची जात की संतान हो। भला भंगी की बच्ची को कौन पालेगा? अछूतों की संतान तो ऊँची जात वालों के लिए धोबी के कुत्ते की तरह है-न घर के न घाट के।''[32]

जिस देश में सदियों से मनुष्यता (मानवीयता) का पाठ पढाया गया है। क्या वह आज दैविय स्तर तक ही सीमित होकर रह गया है? जिसके इतिहास में विश्व स्तर पर भाईचारा और समानता की उपदेशात्मक पंक्तियां दर्ज हैं 'जहां बुद्ध जैसे महान विचारक पैदा हुए जिनकी मिसाल विश्व के कोने-कोने में दी जाती है। जहां महात्मा गांधी एवं डा० भीमराव अंबेडकर जैसे महान युग पुरुषों ने जन्म लिया हो, उन्हीं के देश में आज भी दलितों को घृणित दृष्टि से देखा जाता है जो यह कह कर आत्मबोध का अनुभव करते हैं कि-''पशुओं

की तरह पेट पाल कर, कुत्तों की तरह जीवन व्यतीत कर के ही हम अपने को धन्य समझते हैं।''[33] यह है-तथाकथित हिंदू समाज की दारुण कहानी, जिसमें व्यक्ति सभ्य मानव की तरह व्यवहार नहीं करते हैं। बल्कि हिंदू समाज की मानवीयता के बीच वैचारिक खाई देखने को मिलती है।

ईसाई समाज

हिंदू समाज ने वर्ण एवं जाति व्यवस्था को सामाजिक वैधता प्रदान कर पांच हजार वर्षो के पहले से किया हुआ जातिवादी प्रणाली दुनियां के किसी देश में नहीं है, यह केवल भारत में ही है। इस समाज में ''एक मनुष्य-दूसरे मनुष्य को अपने से जाति में छोटा समझता है, कुल में छोटा समझता है, नीच समझता है, पतित समझता है और अस्पृश्य समझता है।''[34] यह बात सच है कि हिंदू समाज ने भारतीय समाज के छः करोड़ लोगों को अछूत बना रखा है। जब कि ईसाई समाज पूरे भारत को अछूत बना डाला है। तभी पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' नें कर्तव्यबोध से प्रेरित होकर खुले रूप में भारतीय समाज की नस-नस का चीड़-फाड़ किया है। वे लिखते हैं कि-''हम छः करोड़ से नफरत करते हैं, हमसे सारा संसार नफरत करता है, हम नफरत बोतें हैं, नफरत काटते हैं।''[35] इक्कीसवीं सदी के दहलीज पर भी धर्मांतरण की समस्या बौद्धिक वर्ग के लिए विमर्श का मुद्दा बना हुआ है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में धर्मांतरण संबंधी विवादों को बड़ी ईमानदारी से दिखाने का प्रयास किया है। अब सवाल धर्म परिवर्तन का नहीं है। बल्कि ईसाई या बौद्ध धर्म ग्रहण करने के पीछे क्या मंतव्य है? क्या ईसाई पादरी स्वार्थ के वशीभूत से कार्यो को अंजाम देते हैं? या उनका उद्देश्य वास्तव में गरीब और अछूत समाज की व्यवस्था में परिवर्तन लाना है, या उन्हें समाज की विकास की मुख्य धारा से जोड़ने लायक बनाना है। इन्हीं सवालों से पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' भी टकराते हैं। उन्होंने ईसाई पादरियों के सामने प्रश्न करते हुए लिखते हैं कि-''कितने ऐसे अछूत आप पेश कर सकते हैं जिन्हें आपने अपनी जाति में मिलाकर समाज में बराबरी का पद दिलवाया हो?...यह शुभ सेवा नहीं है, जिसका की आपकी धर्म-ग्रंथ में महत्व हैं यह स्वार्थ साधना है। मुर्खो की मूर्खता से लाभ उठाना है। इसे शुद्ध सेवामय तब मानता जब आप इन्हें अपने समाज में मिलाते हैं, पढ़ाते-लिखाते, ज्ञानी बनाते और तब उनसे पूछते कि तुम, हिंदू धर्म अच्छा समझते हो या ईसाई या कोई भी नहीं?''[36]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जातिगत और धर्मगत रूढ़ियों और दुर्गुणों को बहुत बारीकी से समझते थे। इसके दुष्परिणामों को भी भली-भांति पहचाना था। तभी उन्होने लिखा है कि ''हिंदू मूर्ख हैं, उन्हें सभी संसार के चरणों की अनेक ठोकरें खानी हैं। इसी लिए उनके यहां इतनी जातियां, उपजातियां, ऊंच-नीच और अछूत हैं।''[37] वहीं इसाई मतावलंबियों के गलत मनसूबों की भी खोज-खबर लेते हुए लिखा है कि-''आप उन हिंदूओं से अच्छे जरूर हैं. ....जिनके कारण ये छः करोड़ अभागे अछूत बने पड़े हैं। जो न तो इन्हें छूते हैं और न मनुष्य बनने देते हैं।''[38]

पाश्चात्य समाज में नारी की स्वतंत्रता को तरजीह दी जाती रही है। 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में मिसेज यंग ने 'स्त्री स्वातंत्र्य समर्थिनी समिति' का संचालन करती हैं। यह संस्था स्त्रियों के मनमाने ढंग से पुरुषवादी लोगों को होश ठिकाने कराने के लिए प्रयासरत हैं। मिसेज यंग कहती हैं-''नो-नो वो-हजार बार नो! तुम पुरुषों के स्वार्थ के लिए हम अपनी समिति का नियम नहीं तोड़ेंगी। हम यहां पर उन्हीं पुरुषों को निमंत्रित करती हैं, जो हमारे हाथों के खिलौने हों हमारी शर्तें स्वीकार करते हों। तुम सबने प्रतिज्ञा की है कि हमारी समिति के नियमों का पालन करोगे। बस दूसरा शब्द नहीं।''[39]

हिंदू समाज में आध्यात्मिक उपदेशात्मक प्रवृतियों का बोलबाला रहा है। भारत की दार्शनिक पहचान भी विश्व के कोने-कोने में पहुंचती रही है। 'उग्र' कृत 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में भी आध्यात्मिक विचार स्वाभाविक रूप से चित्रित हुए हैं ''तुम ऐसी दुनिया में रहते हो जिसमें सुख के साथ दुख, प्रकाश के साथ अंधकार, विश्वास के साथ अविश्वास, और प्रेम के साथ द्वेष अक्सर देखे जाते हैं। दुनिया रंगमंच है जैसा कि पूर्व और पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, चारो ओर के विद्वान कह गये हैं-नाटकीय सत्य से परे किसी ठोस सत्य को ढूढ़ना व्यर्थ है, मूर्खता है, बालू से तेल निकालने की आशा है। ....सांसारिक खिलौनों से इतना गंभीर संबंध रखोगे तो कष्ट पाओगे।''[40] इस प्रकार सांसारिक एवं दार्शनिक गतिविधियों का लेखा-जोखा 'बुधुआ की बेटी' में देखने को मिलता है-''यही स्वाभाविक है! यही मानुषिक है, धर्मावतार! हजार विद्वान होने पर भी मनुष्य हमेशा दार्शनिक नहीं रहता है। ....मानव समाज का अधिकांश भाग हमेशा दार्शनिक रहना भी नहीं चाहता।''[41]

समाज की प्रत्येक गतिविधियों में संतुष्टि नहीं मिलती है। अव्यवस्थित जीवन के उतार चढ़ाव से ही मानुषिक असंतोष भर जाता है। और व्यांवहारिक पश्चाताप के सिवाय कुछ नहीं दिखता है ऐसा समाज की कु-प्रवृतियों के कारण होता है। इसीलिए पाण्डेय बेचन

शर्मा 'उग्र' ने सामाजिक विद्रूपताओं को अच्छी तरह से समझते हुए लिखा है कि-''ऐसे जीवन का अंत असंतोष होता है। और असंतोष तो जीवन को नरक बना डालता है... पश्चाताप के फल, विष-वृक्ष के फलों से भी अधिक कड़वे होते हैं।''[42]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास के माध्यम से तात्कालिक ब्रिटिश उपनिवेशवादी नीति के अधीन सजा काटे, जेल जीवन की त्रासदी पर मार्मिक बयान दिया है। वे लिखते हैं कि-''जेल खाना नरक भोगने की जगह है कि मजे में रहने की। अठारह बरस का जवान अगर साल भर जेल में रह जाये तो वह छूटने के वक्त चालीस बरस का अधेड़ मालूम पड़ेगा। दुनिया में जेल ही नरक है।''[43] इससे तात्कालीन प्रशासन के शोषण-तंत्र के घृणित मंसूबों का पता चलता है।

किसी भी समाज की बहुत बड़ी सच्चाई है कि 'उच्च कर्म, अच्छे से अच्छे सुखों का उपयोग करने के लिए किया जाता है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति नारकीय जीवन को सोच कर भयाक्रांत हो जाता है। जैसे 'राजा हरिश्चंद्र' नाटक को देखने के बाद प्रत्येक दर्शक त्रासदीपूर्ण स्थिति को पचा नहीं पाता है। वह बार-बार यह सोच कर सहम जाता है और ईश्वर से कामना करने लगता है कि किसी के भी जीवन में ऐसी विपदा न आये।' इसी तरह की त्रासदी 'बुधुआ की बेटी' की नायिका के साथ होता है। नायिका भंगिन की परवरिश भी शानो-शौकत में पादरी जानसन ने किया। मगर एक भय पूर्ण भंगी बनने का है। लेखक इन्हीं भय एवं त्रासदी से सशंकित है क्योंकि भंगियों की दारुण कथा शेक्सपीयर के 'मैकबेथ' की त्रासदी से कम नहीं है। इसी लिए 'उग्र' ने प्रश्नानुकूल होकर लिखा है कि-''इतने वर्षो तक तो इसने (रधिया) पादरी साहब के साथ इस सफाई, इस शौकीनी और इज्जत की जिंदगी बसर की अब क्या यह फिर भंगी होना पसंद करेगी?''[44] इन सारे प्रश्नों का जवाब रधिया के वश में नहीं है क्योंकि उसे अछूतपन के ज़िंदगी का जरा-सा भी एहसास नहीं है; अनुभव नहीं है। रधिया भंगिन का पालन-पोषण संभ्रांत घराने में हुआ उसने अच्छे से अच्छे खाने खाये, बढ़िया से बढ़िया कपड़े पहने, शायद यह एक सामान्य भंगिन के लिए संभव नहीं था इन्हीं कारणों से पादरी जानसन को इस बात का भय सताता रहा कि-''राधा की प्रवृति आनंदों की ओर अधिक है। बचपन से ही वह खाने और पहनने की अच्छी-अच्छी चीजों को प्रेम और लालच की नजर से देखती है। इस ओर भी बुधुआ को सावधान रहना होगा। अब अगर एकाएक, वह राधा को भंगिनों की तरह गंदी मजदूरिनों सी रखना चाहेगा, तो अनर्थ हो सकता है।''[45] यह सिर्फ जानसन का विचार नहीं है,

अपितु सारे हिंदूस्तानियों के जेहन की उपज है। उन्हें विश्वास है कि अंग्रेजीयत समाज में पलने वाला लड़का हो या लड़की सभी भारतीयों को काले हिंदूस्तानी के रूप में ही देखेगा। गुलाबचंद जैसे पात्रों को इस बात का एहसास है कि-''मैंने पहले ही अर्ज किया था कि चाहे वह भंगी की ही लड़की क्यों न हो, पर पली है, साहबों के बीच में-बल्कि साहबों के गुरुओं या पुरोहितों के बीच में। वह भला हम काले हिंदुस्तानियों को क्या समझेगी?''[46]

समाज का समस्त तंत्र अछूतों को नारकीय बनाने, उसमें जीवन बसर करने के लिए प्राचीन काल से ही विवश करता रहा है। इसमें सामाजिक उपबंधों के साथ-साथ पुलिसिया तंत्र भी पीछे नहीं रहा है। अपने थोड़े से स्वार्थ के वशीभूत भंगियों को प्रताड़ित एवं कुकर्मो में ढकेलते रहे हैं-''बनारस की पाजी पुलिस उसको तंग कर मारती। पुलिस ही ज्यादातर इन जाहिल-जपाट, अछूतों व अनपढ़ गरीबों को पाप की ओर झुकाती है।''[47]

प्रत्येक समाज में कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो 'सर्वधर्मसमभाव' और 'परांतः सुखाय' के निमित्त अपना कार्य करते हैं। जबकि अधिकांश लोग अछूत लोगों की जिंदगी पर दो मिनट का चिंतन नहीं करते हैं कि आखिर भंगी समाज की नरकीय जीवन के लिए कौन जिम्मेदार है! शायद पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' इसकी जड़ में अछूत समाज एवं उच्च समाज दोनों को दोषी मानते हैं तभी तो 'उग्र' भंगियों को स्वयं संभलने और सक्रिय रहने का क्रांतिकारी मंत्र देते हैं-''ये अछूत स्वयं संभलो, अपने आप को आदमी घोषित करो और पावक-ज्वाल-माल-सी जगाकर अपनी कमजोरियों को भस्म कर डालो.....मेरा ख्याल है, अगर कोई सच्चा क्रांतिकारी हो तो केवल मूर्ख और घृणित किंतु भोले अछूतों को लेकर गदर करा सकता है।''[48]

अछूत समाज

इस बात में बहुत बड़ी सच्चाई है कि हिंदू समाज द्वारा उपेक्षित विषय-वस्तु एवं सामाग्री ही अछूत लोगों के लिए पुण्य आत्मा की तरह संजो कर रखने वाली होती हैं। सभ्यता और संस्कृति के नाम पर अछूत समाज के पास क्या है? वहीं चोरी, शराब, जादू, टोना-टोटका, भूत-प्रेत, कलिया, जेल, गंदगी और जहालत भरी जिंदगी कुछ नहीं। 'उग्र' लिखते हैं-''सारी जिंदगी केवल मैला फेंक कर गुजर करना पूरा नरक-दंड है। ....अपने को ऊंचा लगाने वाले लोग ईश्वर चिंतन और हवाखोरी की तैयारी करते हैं, उस वक्त हम क्या करते हैं? या तो कूड़ा-गाड़ी की गंदी हवा से अपनी सांसों में जहर भरते हैं। या पखानों

में झाड़ू देकर, अपने माथे पर मैले का मुकुट धारण कर, पतितों के सरदार की तस्वीर बनाते हैं। .....हम प्लेग या हैजा, खांसी या बुखार से मरते रहे, कोई हमें पूछने वाला नहीं। कोई हमारी दवा दारु की फिक्र करने वाला नहीं। यह नरक भोग नहीं तो और क्या है?''[49]

'उग्र' ने 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में ऐसे समाज की भी कल्पना की है जिसमें सभ्य लोगों के साथ-साथ सामाजिक रूप से दुराचारी लोग भी देवी-देवताओं की शरण लेकर अपने गलत कार्यो को अंजाम देते रहे हैं इनमें से अछूत समाज प्रमुख हैं। 'उग्र' लिखते हैं कि-''अक्षत और सरसों और रोली और काले तील से वह खोपड़िया चैंताता और फिर इन्हीं चीजों की एक-एक चुटकी, चोरी करने जाने से पहले, अपने शागिर्दों को देता है।''[50] यही है धार्मिक कर्मकाण्डों का दुरुपयोग, जिसका सदियों से चोरों, डाकूओं और गलत प्रवृतियों से लैस समाज के लोग करते आ रहे हैं।

प्रेमचंद युगीन रचनाओं के ऊपर गांधीवादी विचारों का प्रभाव सहज रूप में देखा जा सकता है। महात्मा गांधी ने समाज के रुख को तात्कालीन परिवेश के अनुरूप बदल दिया था। वे जिधर निकलते, उधर ही सौ-पचास लोग उनके विचारों को अमल में लाते और समाज में परिवर्तन हेतु प्रयास शुरू कर देते थे ''उन्हें कोई पचास नवयुवक ऐसे मिल गए हैं जो उनके उग्र विचारों से सर्वथा सहयोग करते हैं और सत्य के सम्मुख, मनुष्यता के सम्मुख, न्याय के सम्मुख इस ढ़ोंगी समाज को तृण बराबर महत्व भी नहीं देते।''[51]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने प्रत्येक समाज के नब्ज को बड़ी कुशलता के साथ पहचाना है। उपेक्षित जिंदगी की एक-एक कहानी स्वयं 'उग्र' के जीवन में देखने को मिली है बल्कि इसी उपेक्षा का शिकार भंगी समाज को भी झेलना पड़ा है। 'उग्र' की अछूत समाज पर निम्नलिखित टिप्पणी ऐतिहासिक महत्व की लगती है-''दुनिया के अंधकार में भटकने वालों की सभा अंधकार में ही आरंभ हुई!''[52] अछूत लोगों के जीवन में उजाला लाने के लिए ही बुधुआ कहता है कि-''मैं आप लोगों को यह बतलाना चाहता हूं कि क्या करने से इस सामाजिक नरक से हमारा उद्धार होगा। हमारे लिए सबसे जरूरी बात यह है कि हम सब तरह की गंदगियों को छोड़कर सफाई का जीवन बिताना सीखें.....क्योंकि सफाई का संबंध पैसे से कम और मन से अधिक है। एक धोती, एक कुर्त्ता और एक ही अंगोछा रखने वाला प्राणी भी-अगर जरा सा हाथ-पैर हिलाने में आलस न करे तो साफ और खूब साफ

रह सकता है।''[53] यह है-बुधुआ से बुद्धूराम चौधरी बने अछूत उपदेशक की। जिसके चरित्र में गौतम बुद्ध जैसे भावनात्मक चेतना दिखाई देती है।

मनुष्यानंद और बुधुआ चौधरी का नेतृत्वकारी वैचारिक एवं सामाजिक आंदोलन ने यह कहने को मजबूर कर दिया है कि-''एक बार हमें आपस में एकता कर इन ऊँचों की अकल ठिकाने करनी होगी। एक बार उन्हें अच्छी तरह से समझा देना होगा कि जिस तरह हम तुम्हारे आश्रित हैं, उसी तरह तुम भी हमारे आश्रित हो। ...अब बहुत दिन हो गए तुम अज्ञानी ऊँचों को हम पर जुल्म करते हुए। अब हम भी अपने को चिन्हने लगे हैं। अब समाज की मशीन प्रेम और सहयोग से चलने लगी, भय और शासन और अत्याचार से नहीं।''[54]

भंगियों को सिर्फ उच्च समाज की ही जरूरत नहीं है। बल्कि जेल व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए, पाखाना साफ करने के लिए भी अछूतों की आवश्यकता महसूस होती है तभी तो बुधुआ कहता है कि-''हम भंगी बेकुसूर भी जेलों में भेजे जाते हैं। जेल वाले बाहरी अफसरों को लिख कर हमें मांगते हैं, जेल के पाखाने साफ करने के लिए।''[55]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' स्त्री-पुरुष संबंधों को लेकर बहुत स्पष्टवादी दृष्टि अपनाया है। साथ ही साथ व्यक्ति से व्यक्ति के रिश्ते को कम शब्दों में लिपिबद्ध कर दिया है। वे लिखते हैं कि-''औरत के बीच में आते ही, पुरुष-पुरुष की पुरानी से पुरानी मित्रता ही झंझावात में पड़ी हुई रूई की तरह न जाने कैसे, न जाने क्यों, न जाने किस ओर उड़ जाती है।''[56] यह कथन प्रकृति और व्यवहारिक चिंतन का उन्मुक्त भाव का एहसास दिलाती है। जिसपर बे-बाक टिप्पणी 'उग्र' जैसे क्रांतिकारी लेखकों से ही संभव हो पाई है।

काशी नगरी (वाराणसी) हिंदू समाज की महान धार्मिक एवं पवित्रता के लिए प्रसिद्ध रही है। यहां की विविधतावादी संस्कृति के लोग भी रहा करते हैं। यहीं पर कबीर दास जैसे विद्रोही पुरुष जनम लिए, जिन्होंने तमाम हिंदू समाज की पोंगापंथी सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों को खुली चुनौती दिया था। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने भी काशी की अस्सी की पोल को खोलते हुए लिखा है कि-''जो जहां पर युगों से है वहीं रहे। पवित्र अपने स्थान पर, अपवित्र अपने....यह वही बनारस है जहां आर्यो का दयानंद भी लुलुआकर निकाल दिया गया था। यह बनारस सारे भारत और सारे विश्व की पवित्रता और धार्मिकता का केन्द्र है।''[57] 'उग्र' का यह संवाद काशी की छलावा पूर्ण पवित्रता पर जोर का तमाचा

है। जिसे 'उग्र' के लिए कर पाना संभव था। बनारस की नगरी में यह कभी संभव नहीं हो पाया है कि-''द्विज जातियों के साथ अछूत भी बैठ कर वेद पाठ करें, गंगा-स्नान करें, देव मंदिरों में जायें तथा सारा भेद-भाव दूर होकर सब एकाकार हो जाएं! नाः! ना! भूतो न भविष्यति यह असंभव है।''[58]

न्याय प्रिय समाज अछूत व्यक्ति विशेष या सामाज विशेष द्वारा बना पाना संभव नहीं है, ऐसी धारणाएं समाज में चल रही हैं। जब कि यह सोचना बिलकुल गलत है कि 'उच्च समाज ही सबको न्याय देने का हकदार है। यह एक उच्च समुदाय का निम्न लोगों के लिए छलावा से ज्यादा और कुछ नहीं है'। मगर बुधुआ भी नहीं समझ पाया था। वह कहता है ''कहां तो हम लोग उनसे (उच्च समाज) न्याय की भीख मांग रहे हैं और कहां तुने उनके साथ ऐसा व्यवहार किया। वे अपने मन में क्या सोंचेगे? यही न कि अछूत की छोकरी है, साफ कपड़े पहने है तो क्या अलग घर में रहती है, तो क्या-'जात-सुझाव-न टूटते हैं' इनके रग-रेशे में असभ्यता भर गयी है। ये नीम हैं, मीठे हो ही नहीं सकते। ये बबूल हैं, दुर्गुण कंटकों से भरे हैं। 'कारी-कमारी' हैं, इन पर 'दूजो रंग' चढ़ नहीं सकता।''[59]

पुरुष प्रधान समाज में यह आम धारणा रही है कि लड़कियां परायी सम्पति हैं अर्थात् उन्हें दूसरे के घर जाना है, उन्हें पति ही तार सकता है आदि-आदि मगर कलुषित और गलत प्रवृतियों से सराबोर पुरुष भी मौका-ए-बारदात स्त्री को पति-धन का एहसास दिलाकर स्त्री जीवन के रसानुभूति में लिप्त रहते हैं। घनश्याम इन्हीं विचारों को प्रामाणिकता प्रदान करता है-''अरे, लड़कियां पतियों की होती हैं, फादरों की नहीं। हर तरह से तुम पहले मेरी हो, फिर अपने पिता या पापा की। मैंने माना, आरंभ में तुम्हे और तुम्हारे पापा को भी, इस वियोग से कुछ कष्ट होगा वह फिर कुछ भूल जायेगा। आदमी की यह प्रकृति है।''[60]

आज हजारों युवतियां पुरुषवादी शोषण के प्रेमजाल में फंसकर अपने को बर्बादी के कगार पर ला खड़ी कर देती हैं। यदि पढ़ी-लिखी लड़कियां पुरुषों के प्रलोभन में फंसती हें तो और भी शर्मनाक बात होनी चाहिए। इसी तरह के तंत्र का प्रतिभागी रधिया भंगिन भी हुई वह ''उसके (घनश्याम) प्रलोभनों में बुरी तरह फंस गयी। सामाजिक या दुनिया के ढंग से विवाह न होने पर भी वह उसकी भार्या का पार्ट खेलने लगी। अब वह उसे इतना प्यारा हो गया कि उसके बिना एक-एक पल युगों सा बीतता, पर उसकी उपस्थिति में घंटे और दिन, और हफ्ते, और महीने इस तरह बीत जाते जैसे एक पल-सो भी कम से कम विलापों

वाला। ....उसका वश चलता तो वह मुंह से लगा कर एक ही घुंट में, यौवन की उस सजीव सुराही को-घट-घट, चट-पट पी जाता।''[61]

समाज में कुछ ऐसे उतरदायित्वबोध की प्रवृतियां होती हैं जो स्वयं के भाई-भतीजावाद, परिवार उपबंधों से ऊपर उठकर सर्वकल्याण के लिए प्रेरित करती हैं। बुधुआ की बेटी महीनों से लापता है उसकी अनुपस्थिति बुधुआ को सामाजिक अस्मिता, इज्जत-मयार्दा से ज्यादा पीड़ादायी है। दलित समाज में न जाने कितनी लड़किया रधिया से भी नीच जीवन जीने के लिए मजबूर हैं। उन सभी स्त्री-पुरुष समाज की भक्तिकामी आंदोलन से बढ़कर बुधुआ के लिए कुछ भी नहीं है। इसी बात को भंगियों को महसूस कराने में मनुष्यानंद आजीवन लगा हुआ है। वह बुधुआ को बहता है कि ''यदि तुम अपनी जाति के लिए लड़कर एक बार सुख और शांति ढूंढ लो तो बस मिल गयी तुम्हे तुम्हारी राधा। आज यदि तुम दुनिया की दृष्टि में पतित, दरिद्र, अज्ञान और अबल न होते तो कौन कह सकता है कि तुम्हारी राधा को इस तरह तुम्हारा साथ छोड़ना पड़ता?''[62]

उच्च समाज के दंभ भरी एक-एक आवाजें भंगी समाज को काटों की तरह चुभती नजर आती हैं मानो भंगी इंसान नहीं, उनमें मानवीयता नहीं है। वह केवल पाखाना साफ करने के लिए ही पैदा हुआ। हिंदू समाज की कुटिल मानसिकता का स्पष्ट उदाहरण निम्न बातों में देखने को मिलता है '' साले के बच्चे.....शामत सवार है तेरी खोपड़ी पर? क्यों लोगों को हड़ताल की धमकी देता है? भले आदमियों का पाखाना नहीं साफ करेगा, तो करेगा क्या? कलेक्टरी, थानेदारी, सुपररीटेंडी? सुअर कहीं का! अब ऐसी बातें सुनाई पड़ी तो मारे जूतों के सर के बालों की खेती खराब कर दी जाएगी। पाखाना नहीं साफ करेंगे तो डाके डालेंगे ससुरे भंगी!''[63] यही है ब्राह्मणवादी समाज की उच्च मानसिकता जिसके घनचक्कर में अछूत समाज पीसता रहा है। 'उग्र' ने इन्हीं चरित्रों की कुटिलतापूर्ण नीतियों का पर्दाफाश किया है।

अछूत लोग भी अब कमर कस के बगावत का झंडा गाड़ दिया। यह भंगी समाज की चेतनामय वैचारिक संघर्ष की पहली आवाज थी। जिसको उन्हीं की जुबान में 'उग्र' ने कहलवा दिया है। ''बिना टेढी और कड़ी उंगुली किए जिस दुनिया के घट से घी तक बाहर नहीं निकल सकता है उसी दुनिया के लोग सीधी तरह से दलितों को आजादी और अधिकार कैसे देंगे?''[64]

गांधीजी ने दलितोद्धार के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस पार्टी के बैनर तले समाज के संभ्रांत लोगों से अपील की थी। उन्होंने अछूतों की जिंदगी सुधारने के वास्ते प्रयास किया था। आह्वान किया उन लोगों को जो वास्तव में पंगु हो चुकी व्यवस्था से दुखित थे, मर्माहत थे। परन्तु कुछ लोग ऐसे भी थे, जिन्होंने उच्च समाज की कृत्रिमता को बनाये रखने में विश्वास करते थे, महात्मागांधी द्वारा निर्मित 'अछूताश्रम' जिसमें भंगीपन दूर करने के अनेक विकल्पों, क्रिया-कलापों को बढ़ावा दिया जाता था। इस परिवर्तनवादी दृष्टि पर तथाकथित लोग आश्चर्यचकित भी थे। और चकित थे भंगियों द्वारा किये गए आंदोलन पर ''सारे शहर में हड़ताल की चर्चा चल पड़ी और अमीर-गरीब, पंडे-पुरोहित, बाबू-भैया, सभी उत्सुक और चिंतित हो उठे। चकित भी, अरे! इतनी हिम्मत इन पाजियों की! अरे! इनका यह आश्रम एकाएक कहां से तैयार हो गया!! अरे! इन्हें इतने रूपये मिले कहां से? अरे! अरे!!''[65] समाज के कुछ लोग यह भी कहने के उतावले हैं-''सुनते हैं, अछूताश्रम में रहने वाले दलितों को और उनकी स्त्रियों को चरखा कातना, रूई धुनना, चर्खे बनाना, बढ़ई के अन्य काम तथा सूप, पंखे, मेज, कुर्सी आदि तैयार करना बड़े धड़ल्ले से सिखाया जा रहा है। उनके बच्चों को पढ़ाया-लिखाया तथा स्वच्छता प्रेमी बनाया जा रहा है। सुनते हैं, बड़ा उत्साह और बड़ा जोश है, उन भूखे, पतितों में।''[66]

प्रत्येक समाज एक दूसरे के कार्यो-प्रकार्यों पर निर्भर है, जो समाज यह सोचता है कि स्वयं अपने आप में परिपूर्ण हैं। वह गफलत में होता है। 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में तथाकथित हिंदू समाज का यही भ्रम टूट गया, जब भंगियो की हड़ताल को पन्द्रहवां दिन बीता। विश्व प्रसिद्ध पवित्र काशी नगरी अपने कुरुपतम वातावरण में दिखाई देने लगी। ''उफ्फ! उफ्फ! आज पन्द्रहवां दिन है, साले भंगियों की इस हड़ताल का! अब तो सारी काशी 'मालामल' हो गई। जिधर निकलो, उधर ही दुर्गंध-सांस लेना मुश्किल हो रहा है।, लोगों के घरों पर मक्खी और गाबरैले इस तरह कब्जा किये बैठे हैं जिस तरह संसार के गरीब देशों पर अंगरेज।''[67]

भंगियों के हड़ताल और आंदोलन नें सामाजिक रूप सें सम्पन्न और धार्मिक रूप से उच्च कहलाने वालों के होश ठिकाने लगाये और दलितों की वास्तविक जीवनचर्या पर यह बोलने के लिए मजबूर किया ''ड्रेन पखाने तो अमीरों की शोभा हैं-गरीबों के घर तो मेहतर ही नित्य नरक भोगा करते हैं-उफ्फ! जो हो भाई! अब कुछ-कुछ पता चल रहा है कि भंगी का काम कितना घृणित और नरकीय होता है।''[68]

आज दलित समाज सभी को चुनौती देने के लिए तत्पर हैं। वह सामाजिक मुक्ति के लिए जोखिम भी उठाने को तैयार है। यह तभी संभव है - जब अछूत समाज एकताबद्ध हो। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' इन सारी गतिविधियों को बड़ी कुशलता से दर्ज किया है और स्वयं भी हिंदू समाज पर प्रहार करते हैं कि ''शर्म किजिए, महाराज! वे बेचारे भरपेट रोटी मांगते हैं और आप उन्हें-ऐसे धार्मिक और ज्ञानी होकर भी जूते देनें को तैयार हैं। उनकी मर्जी वे नहीं चाहते समाज की वर्तमान शर्तो पर उसका नरक धोना। और आप कौन हैं, उनके साथ जबरदस्ती करने वाले? वे आपके जड़ खरीद गुलाम नहीं।''[69]

21वीं सदी में दलितों के उद्धार पर सभी सशंकित हैं। अछूतों के अंदर नवचेतना का संचार हो रहा है अब किसी से भी बल पूर्वक काम नहीं कराया जा सकता है, उसे शोषणवादी तंत्र में नहीं घसीटा जा सकता है। मगर पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 20वीं सदी के प्रारंभ में ही अपने साहित्यिक योगदान के बल पर दलितों को नवचेतनामय बनाया और चुनौती दी ''सावधान! यह 20वीं सदी है, इसमें जोर-जबरदस्ती की कूड़ा-गाड़ी कभी नहीं चल सकेगी। मनुष्य जाग रहा है-गरीब आंखे फाड़-फाड़कर समता और मुक्ति की ओर ममता से देख रहे हैं।''[70]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अछूतों के द्वारा चलाये जा रहे हड़ताल एवं संघर्ष को बहुत ही सकारात्मक रूप में दिखलाने की कोशिश की है। वे जानते थे कि जिस समाज ने हजार वर्षो से दमनकारी मुहीम चला रखा है वही समाज भंगियों के सामने नतमस्तक हुए जा रहे हैं। और समझौता की प्रवृति को नया रूप देने की कोशिश में लगे हुए हैं वे अछूतों के मांगों को स्वीकारते हैं ''अब तो आधे से ज्यादा शहर तिगुनी मजदूरी देने तथा म्युनिसिपैलिटी सात की जगह सोलह रूपये महीने हमें देने को तैयार है और बच्चों के लिए स्कूल तथा हमारे लिए घर तक बनवा देने को तैयार है।''[71] यह तभी संभव हो सकता है, जब अछूत समाज एकता के सूत्र में बंध कर अपना लम्बा आंदोलन चलाए और उच्च समाज को यह एहसास कराये कि अछूत लोग भी मानवीय सम्मान से रहने जीने एवं पाने के अधिकारी हैं। उन्हें भी इंसानियत की जिंदगी बिताने का हक है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने बुधुआ की बेटी उपन्यास के माध्यम से अछूत समाज की प्रतिबद्धता दर्ज करा रहे थे वे उद्घोष कर रहे थे कि अछूतों को भी मंदिर में जाने का हक मिलना चाहिए। मंदिर में प्रवेश की प्रक्रिया का इंतजार अछूत समाज बड़ी शिद्दत के साथ करता रहा है। 'उग्र' ने मंदिर प्रवेश के जोखिम भरे कार्य को साहस के साथ अपने

औपन्यासिक कृति के माध्यम से 1927 में कराया, जो आगे चल कर डा० अंबेडकर के मंदिर प्रवेश आंदोलन में तब्दील हो गया। यहीं दूरदृष्टि 'उग्र' की सबसे बड़ी क्रांतिकारी पहल थी। अन्यथा अछूत यह सोच रहे थे कि ''लोहा जब खूब गरम हो तो तभी उसे भरपूर ठोंक-पीट कर सीधा कर लेना चाहिए। अभी हमारे लिए मंदिरों के द्वार तो वे खोलना ही नहीं चाहते और क्यों नहीं चाहते?''[72]

प्रेमचंद का होरी अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक संघर्ष करता रहा, फिर भी 'गो-दान' का सपना पूरा न कर सका, मगर 'उग्र' का बुधुआ बाबा विश्वनाथ के दर्शन के निर्मित विचार व्यक्त करने पर अपनी इच्छा की तृप्ति के चर्मोत्कर्ष तक पहुंच गया है । परन्तु बहुत बड़े जद्दोजहद के बाद। मंदिर के धर्माधीशों पर व्यंग्य करते हुए 'उग्र' ने लिखा है ''एक मरते हुए प्राणी को ईश्वर के मंदिर में अपनी मुक्ति के लिए प्रार्थना करने न जाने दें। मानो भगवान ने अपने धर्म के क्रय-विक्रय का उन्हें 'सोल एजेंट' नियुक्त कर रखा है। ये हिंसावादी ऐसी पवित्र संस्थाओं के छाती पर क्यों कोंदो दला करते हैं।''[73]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' बखूबी से जानते थे कि धर्म के ठेकेदारों ने किस कदर शुद्धता के नाम पर हाशिये के लोगों को धार्मिक गतिविधियों से वंचित किया हुआ है। ज्यों-ज्यों आधुनिक समाज विकास के पथ पर बढ़ा है उसके के अनुरूप कर्मकाण्डी व्यवस्था ने अपने आप को परिभाषित किया है। इन्हीं दुष्प्रवृतियों को ध्यान में रख कर 'उग्र' ने लिखा है कि ''इधर सदियों से हमारे धर्म की परिभाषा ही अधार्मिक हो गई है।''[74]

यह बात सत्य है कि अछूत समाज साफ-सुथरे, नंग-धड़ंग, काले चीथड़े और भले-बुरे प्रवृतियों से ग्रसित हैं, किंतु इन्हें भी स्वच्छ वातावरण में लाकर, मंदिरों में जाने की इजाजत मिलनी चाहिए क्योंकि दलित वंचित लोग अशुद्ध जरूर हैं, परन्तु उन जानवरों को कितना शुद्ध माने, जो गंदे खाकर अपनी जीविकोपार्जन करते हैं। इसीलिए यदि एक कुत्ता मंदिर में बिना रोक-टोक के प्रवेश पाने में सफल हो जाता है तो अछूत समाज क्यों नहीं? 'उग्र' ने लिखा है कि ''क्यों न उन्हें स्वच्छता के शर्त पर मंदिर में जाने दिया जाए? यहां किसी घाट पर देखिए, मंदिरों के महादेवों पर कुत्ते विहार किया करते हैं। तो मनुष्य कुते से भी गया-बिता है, जो उसे देवता के दर्शनों से वंचित रखा जाता है? नाश हो इस ढोंग का!''[75]

हिंदू समाज को अंधविश्वासों के तंत्र ने अपने शिकंजे में इस कदर बांध रखा है, जो

सामाजिक और वैज्ञानिक कसौटी पर सही होने पर उच्च समाज उसे स्वीकारता नहीं है, शुन्यता से महिमामंडित समाज अपनी ही धुन में रमा रहता है, उसे मानवीय मूल्यों से कोई सरोकार नहीं होता। उसे हमेशा अपवित्र होने का छद्म चेहरा नजर आता है। इनकी यथार्थ स्थिति का वर्णन पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने बड़ी ईमानदारी से किया है-'' अछूतों का जुलूस मंदिर में घुस गया क्षण भर तक वहां के रक्षक, पंडे ऐसे हथबुद्धि रहे कि उन्हें कुछ कर्तव्या-कर्तव्य सूझा ही नहीं। वह होश में आए और संभले तब जब जुलूस वहां से गायब हो गया। मंदिर ज्यों का त्यों है। वहां की एक भी चीज न घटी न बढ़ी, फर्श जैसे का तैसा स्वच्छ है मानो उसपर किसी के पैर पड़े ही नहीं। बड़ी हलचल मची है, वहां पर पंडों में, इस बात को लेकर कि मंदिर अपवित्र हुआ कि नहीं।''[76]

यह कितना अवैज्ञानिक तर्क है कि मनुष्य के कदम रखते ही मंदिर अपवित्र हो जाते हैं। और गो-मूत्र और गोबर से लिपने या धूल देने पर पवित्र होता है। इसे कौन समझाए कि मनुष्य समझाए कि मनुष्य की पवित्रता से बढ़ कर कोई वस्तु नहीं, क्योंकि ईश्वर को भी मनुष्य ने माना है, बनाया है, अन्यथा वह भी विश्वास के पात्र नहीं हो सकते थे ''अगर ईश्वर के सभी बच्चों के लिए उनका दरबार न खोला जाएगा तो एक दिन ईश्वर की सत्ता उठ जाएगी, मंदिर की मयार्दा नष्ट हो जाएगी।''[77]

'बुधुआ की बेटी उपन्यास में समाज के विभिन्न रूप-रंग, क्रिया-व्यापार, सामाजिक क्रियात्मक परिस्थितियां, धार्मिक मठाधीशों के अतार्किक विचार, सांस्कृतिक पोंगापन, ध र्मांतरण की छद्म रूपी भंवर जाल, मंदिर के अपवित्र संबंधी विचार मुस्लिम समाज की ध ार्मिक कुरुपताओं, स्त्री शोषण के अनेक स्तंभ, और सबसे बढ़कर अछूत समाज के उद्धार संबंधी नवचेतनावादी प्रवृति आदि। इन सभी कु-व्यवस्थाओं से समाज के शुभचिंताकों, विद्वानों, प्रतिबद्ध साहित्यकारों, समाजसेवियों और डा० अंबेडकर ने बढ़ी कुशलता से लड़ाई लड़ी है। और समाज को नये रास्ते पर ला खड़ा करने में अहम भूमिका निभाई है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' उन्हीं लेखकों और समाजचिंतकों में से एक हैं, जिन्होंने बड़ी ईमानदारी से अछूत समाज के एक हिस्से पर गहरी नजर डाला है। यही रचनाकार की साहित्यिक उपलब्धि है।

संदर्भ-सूची

१. संकल्पना वह शब्द है जिसे वास्तविक अनुभव से निकाल कर सुक्ष्म बनया गया है तथा जिसका कमोवेश रूप से आशय उसी वस्तु से है। जिसे सभी जानते हैं । इस प्रकार संकल्पना इंद्रिय ग्राहय वस्तु याजगत के एक रूप का प्रतिनिधित्व करती है। समाज को स्पष्ट रूप से चिन्हित किया है।

२- हरिकृष्ण रावत - समाजशस्त्र विश्वकोष - पृष्ठ संख्या-३५२

३- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-ग - घ

४- वही - पृष्ठ संख्या-२

५- वही - पृष्ठ संख्या-७५

६- मोहन दास नेमिशराय - अपने-अपने पिंजरे -पृष्ठ संख्या-८४

७- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-६

८- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१४६

९- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१२

१०- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१५

११- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२८

१२- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-३१

१३- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-३२

१४- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-३६

१५- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-३६

१६- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-४०

१७- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-४०

१८- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-४५

१९- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-४७

२०- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-५१

२१- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-५४

२२- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-६२

२३- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-६२

२४- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-६३

२५- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-६६

२६- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-६६

२७- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-६८

२८- 'उग्र' - अंधा युग - (नाटक) - पृष्ठ संख्या-११

२९- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-६९-७०

३०- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-७१

३१- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-७३

३२- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-९७

३३- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-७४
३४- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-७४
३५- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-७५
३६- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-७६
३७- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-७६
३८- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-७५
३९- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-८३
४०- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-८७
४१- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-८८
४२- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-८९
४३- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१००
४४- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१०२
४५- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१०९
४६- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१३४
४७- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१०७
४८- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१११
४९- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१२९
५०- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१३२
५१- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१३८
५२- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१३९
५३- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१४०
५४- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१४२
५५- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१४६
५६- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१५३
५७- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१५६
५८- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१५७
५९- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१५९
६०- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१७४
६१- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१७५
६२- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१७७
६३- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१७८
६४- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१७८
६५- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१७९
६६- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१८६
६७- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१८५
६८- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१८६
६९- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१८८
७०- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१८८
७१- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२०१
७२- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२०१

७३- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२०७
७४- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२०८
७५- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२०८
७६- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२०९
७७- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२१६

अध्यायःचार

'बुधुआ की बेटी' उपन्यास के पात्रों का अध्ययन

- मुस्लिम पात्रः दुर्गति के लिए स्वयं जिम्मेवार
- लेखक की दृष्टि में नारी
- धार्मिक प्रवृति के पात्र
- उच्च समाज
- आदर्श व्यक्तित्व का गठन
- दलितों के जीवन के विविध आयाम

साहित्यिक सृजन में एक पात्र लेखक भी होता है, जो स्वयं को अप्रत्यक्ष रख कर यथार्थ जीवन के संदर्भ में पात्रों को 'कुम्हार के घड़े' की तरह सुंदर, सौम्य, शालीन और संभव हुआ तो कुरुपता का आवरण चढ़ाकर अपने अनुरूप व्यवस्थित करता है। मगर यह स्वीकारोक्ति कि '' 'उग्र' उतना ही अशिक्षित, कु-शिक्षित लेखक तब तो था ही, अब तक है।''[1] तभी लेखक कुशिक्षित अछूतों के जीवन को समझ पाया है, अन्यथा जानने पहचानने का दावा निश्चित ही उद्देश्य में रूकावट पैदा करता है। खैर, सुधार जब भी हो, समय के अनुरूप हो, वही उचित और सत्यता को प्रामाणिकता प्रदान करता है।

उपन्यास विधा का लेखन जीवंत संभव हो पाने का एक कारण है-पात्रों के रहन-सहन, शिक्षा-अशिक्षा, संस्कार-परिवेश आदि के अनुरूप यथा स्थान गढ़ना। तभी उपन्यास में जीवंतता लाई जा सकती है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपने उपन्यास 'बुधुआ की बेटी' में पात्रों का चयन युग-परिवेश और तात्कालिक आवश्यकता के अनुरूप किया है। और उन पात्रों को सजीव बनाने की सफल कोशिश की है। इस उपन्यास का प्रत्येक पात्र किसी-न-किसी समूह या पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'रधिया कौन है' शीर्षक से 'उग्र' यथार्थ की ओर कदम बढ़ाते हैं।

'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में कई समूहों में पात्रों को विभाजित किया जा सकता है। पहला, परंपरागत ढ़ाचे को ओढ़े आगे बढ़ते हुए पात्र हैं, इनमे पुरानी पीढ़ी के लोग हैं। जिन्हें आदर्शवाद और धार्मिक आडंबर आदि को छोड़ने से परहेज है। वहीं युवा पीढ़ी के पात्र हैं। जो स्वयं आधुनिक समाज को आत्मसात कर लेना चाहते हैं और अपनी तरह से जिंदगी जीना चाहते हैं। साथ ही साथ शहर की चौकाचौंध रोशनी में अपने को सराबोर कर लेना चाहते हैं।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' मनचले युवा पात्रों के संवाद से उपन्यास का आरंभ किया है-''ओ.हो.हो हो! तुम रधिया को नहीं जानते?.....तब तुमने जमाने को खाक जाना।''[2] वहीं अपने को उच्च एवं संभ्रात कहलाने वाले पात्र का परिचय देते हुए घनश्याम कहता

है-''तुम भी अजीब गंदे आदमी हो। जब सोचोगे गंदी ही बात सोचोगे....छोड़ो रधिया भंगीन को। किसी अच्छी चीज की चर्चा चलाओ।''[3] यह कथन तथाकथित उच्च कहलाने वाले लोगों की टिप्पणी है, जो सदियों से अछूत लोगों के प्रति बनी हुई सामाजिक स्थिति का बयान करती है। यह एक कड़वी सच्चाई है कि 'उग्र' अपने समय की परिवर्तनगामी प्रवृतियों एवं मनःस्थितियों से पात्रों को सुसज्जित किया है।

'उग्र' ने 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में पुरुषवादी मानसिकता को स्पष्ट रूप से दिखाने का प्रयास किया है। युवा पीढ़ी के पात्रों में बरकत भी घनश्याम और गुलाबचंद की श्रेणी में आता है। क्योंकि उसकी अपनी विशेषता है ''बरकत ने उसे छेड़ा जरूर होगा। मैं उसको खुब जानता हूं, सर से पैर तक पाजी है''[4] गुलाबचंद की उपरोक्त टिप्पणी बरकत के औपन्यासिक पात्र की मनःस्थिति को दर्शाता है। परन्तु ऐसा भी है कि ''एक दिन उसने उस (रधिया) को जरा सा छेड़ा और बस! संभाल कर झाड़ू ले खड़ी हो गयी।''[5] यह दलित नारी की पहली तेजस्वी एवं अस्मितावादी पहचान है जिसे बचाये रखने के लिए वह उठ खड़ी होती है और प्रतिशोध की भावना के साथ प्रतिवाद करती है। रधिया का प्रतिउत्तर ''मैं तुम्हारे यहां झाड़ू देने के लिए नौकर हूं, इज्जत देने के लिए नहीं। खबरदार जो कभी फिर इस तरह की इशारे बाजी की। मैं चारो ओर हो-हल्ला मचाकर दम लूंगी।''[6] आज से पचहत्तर वर्ष पहले नारी के आत्मसम्मान और स्वाभिमान के लिए 'उग्र' ने रधिया जैसे पात्रों को चुना था। यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि रधिया अंग्रेजी समाज के संभ्रात परिवार में पली-बढ़ी थी। उसका प्रतिवाद स्वतः परिस्थिति के अनुरूप है। परन्तु घनश्याम जैसे पात्र भी हैं जो यह कहते थकते नहीं हैं ''मगर यार, आफत है, शितम है, कहर है, कयामत है''[7] किंतु डर इस बात का भी है कि ''मेरे घर नहीं, अपने घर। रधिया ऐसी भंगिन को नौकर रखने पर बाबूजी मुझे जीने न देंगे।''[8] इसीलिए युवा पीढ़ी परंपरों का लबेदा उतार कर फेंक देना चाहती है। ऐसे पात्र पित्तृसत्ता की वर्चस्ववादी प्रवृति को घीसी-पीटी, गंवारू बताकर नकार देना चाहते हैं ''आज कल के बड़े-बुढ़े इस बात को भूल ही जाते हैं कि कभी वे भी जवान थे, कभी उनके दिमागों में भी उबाल आते थे।''[9] युवा पीढ़ी की यह हुंकार ''अजी मारो गोली! अपना तो सिद्धांत है कि अपनी मौजों के सामने दुनिया के सूखे लेक्चरबाजों को तृण भी न समझना। भूकना जिनका पेशा है, वे भूका करें। अपने रास्ते चमकते हुए चलते जाना अपना काम है। हम किसी के लेक्चर की क्यों परवाह करें।''[10] यही है-युवा लोगों की स्वच्छंदता पूर्वक जीवन जीने की लालसा, जो किसी बंधन को अनावश्यक मानते हैं। उसे दर किनार करते हुए आगे

बढ़ते चकाचौंध जिंदगी में गुम हो जाना चाहते हैं। वहीं पुरानी पीढ़ी के पात्र यह कहने में गर्व का विषय समझते हैं कि ''तुम संसार के अपने उस मित्र के सामने झूठ बोल रहे हो, जिससे बड़ा तुम्हारा हित चिंतक कोई हो ही नहीं सकता''[11] यह बात सच है कि प्रत्येक मां-बाप अपने बच्चों को सही जगह और उचित दिशा में आगे बढ़ते देखना चाहते हैं। युवा घनश्याम और उसके पिता बलराम के बीच संवाद दो पीढ़ी के बीच विभेद और संघर्ष का प्रतीक बन गया है। घनश्याम कहता है-''हां मैं झूठ बोलता था-स्वीकार करता हूं-चौक नहीं, मैं दुर्गाकुण्ड जा रहा हूं, और जा रहा हूं रधिया भंगिन को देखने। फिर ? मेरी इच्छा, मैं खराब ही सही, मैं पातकी ही सही, आप तो पुण्यात्मा हैं-बने रहिए।''[12] यही युवा पीढ़ी का उद्घोष है, जो पुरानी परंपरागत विचारों से दूर ही रहना चाहते हैं।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने मनुष्यानंद (अघोड़ी) जैसे गांधीवादी पात्रों को उपन्यास में लाकर समाज की समस्त बीमारी का इलाज करने की पूरी कोशिश की है। मनुष्यानंद मानव जाति की एक-एक गतिविधियों से वाकिफ है। वह अफसोस करता है कि-''ओह! दुनिया ऐसी भी होती है, मनुष्य ऐसा भी होता है।....मुझे ब्राह्मण से राक्षस न बनाओ।''[13] यह कथन मनुष्यानंद के सार्वभौमिक समाज के दृष्टिगत ज्ञान का परिणाम है। जिससे मनुष्यानंद हमेशा दुखित एवं चिंतित दिखाई पड़ता है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने कुछ ऐसे अनाम पात्रों को उपन्यास में स्थान दिया है। इन बेनाम पात्रों के संवादों से उनके समुदाय का वास्तविक परिचय मिल जाता है। एक पात्र कहता है '' भाग! भाग!! अभी बाहर ठहर! अभी बड़े-बड़ों से तो औघड़ बाबा को फुर्सत ही नहीं है, और तू साला अछूत भंगी भीतर पिला पड़ रहा है। मारूंगा और हाथ की खोपड़ी भन्ना उठेगी।''[14] दूसरी तरफ अघोड़ी जैसे पात्र यह कहते हुए अपने कर्तव्य-बोध का परिचय देते हैं ''मैं तुझे (बुधुआ) नीच या अछूत या अपने अथवा किसी से भी छोटा नहीं मानता। बोलता क्यों नहीं? तू भीतर क्यों नहीं आया भाई?''[15]

मुस्लिम पात्रः दुर्गति के लिए स्वयं जिम्मेवार

'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में मुस्लिम पात्रों की दुर्गति ही देखने को मिलती है। वे स्वयं अपने कुबुद्धि और कुकर्म के लिए जिम्मेदार हैं। लियाकत हुसैन कहता है कि-''पहले तो रूपयों के साथ-साथ मजा भी लिया करता था, पर अब, तुमसे झूठ क्यों बोलूं, मजा लेने

की ताकत नहीं रह गयी। अब मजा दूसरे लेते हैं, रूपये मैं लेता हूं।''[16] उपन्यास में बरकत, लियाकत एवं रहमान जैसे पात्रों की सांस्कारिक स्थिति गलत प्रवृति की सूचक है। जिसको आजीवन जीने में ही आनंद या परलोक का अनुभव करते हैं। ये पात्र बनारस हो या लखनऊ धर्म के नाम पर अपनी मानवीयता को भी नीलाम करने में हिचकते नहीं, क्योंकि उन्हें धर्म से वास्ता नहीं रह गया है, अपितु उन्हें धन से सरोकार है।

समाज में ऐसी भी स्त्रियां हैं जो जाने-अनजाने किसी के हवस का शिकार होती रहीं हैं- वह भी नीच और कुकर्मी मानसिकता के हाथों। ऐसे में समाज के अधिकांश लोग स्त्री को ही कुलक्षणी का दर्जा दे देते हैं। 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में एक वृद्ध महिला सुकली के अचानक गायब हो जाने पर कहती है-''ऐसी कलाबाज मेहरारू! मेरी कोख की छोकरी ऐसी बदमाश होती तो मैं दोहाई सहीद बाबा की!-ओझा से बान फेंकवा कर उसकी छाती फड़वा डालती।''[17] वहीं एक पति की मनःस्थिति क्या होगी? जब उसकी पत्नी धर्म की आँड़ में चलने वाले रंडी खाने में हो, तो बस यही कहेगा-''मुझे छुरा दे! दे! आज जान लेकर रहूंगा-आज खून होकर रहेगा।''[18] यही नहीं पढ़े-लिखे बौद्धिक पात्र भी स्त्रियों को स्वतंत्रता प्रदान करना मुनासिब नहीं समझते है। तभी तो मिस्टर यंग और मिसेज यंग के बारे में 'उग्र' ने लिखा है-'' उसकी (यंग) स्त्री भी जवान और सुंदर पुरुष के बगल में बैठकर आंखों और कपोलों और होठों से मुस्कुरा रही थी। यद्यपि...फिर भी उसका खून ताव खाने लगा''[19] इन सारी गतिविधियों को ध्यान में रखकर मनुष्यानंद, मिस्टर यंग को कहता है कि-'' तुम कानून के पंडित हो, बुद्धिमान हो! तुम्हें वैसा काम नहीं करना चाहिए जैसे काम करके बुधुआ भंगी फाँसी पाने का स्वप्न देख रहा है।''[20] कुछ पात्र ऐसे भी हैं जिनका यह कहना है कि-''मौलवी था मौलवी। साला लड़के देने के बहाने औरतों को अपने यहां बुला-बुलाकर बे-ईज्जत किया करता था। भगवान भी कैसी सजा देते हैं। मरने पर भी साला गाली सुन रहा है। उसकी लाश की फजीहत हो रही है। उसके नाम पर थुका....जा.....।''[21]

लेखक की दृष्टि में नारी

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' स्त्री पात्रों को जगह-जगह पर मुखरित और प्रतिवाद करने की स्थिति में ला खड़ा किया है। मिसेज यंग का संवाद इसकी मिसाल है। मिसेज यंग कहती हैं कि-''स्त्री-जाति पर शुरू ही से सबल होने के कारण, पुरुष जुल्म करते आ रहे हैं। पुरुषों का गढ़ा हुआ समाज भी उन्हीं के पक्ष में अधिक है। अब स्त्रियों को एक बार इस स्वार्थी पुरुष-जाति के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करनी होगी!''[22]

ईसाई समाज में स्त्रियों की दशा

'उग्र' ने यह देखा था कि ईसाई समाज में स्त्रियों को स्वतंत्रता मिली हुई है, पर उस समाज में भी नारी की बहुत अच्छी स्थिति नहीं रही है। इस समाज की औरतें भी स्वतंत्रता के नाम पर दुरुपयोग की नीति चला रखी है। इन्हीं कारणों से मिस्टर यंग जैसे बौद्धिक पात्र भी भारत की सामाजिक व्यवस्था को अच्छा समझते हैं। वे कहते हैं-''उन्हें (नारी को) स्वतंत्रता दी इसीलिए कि हमारा जीवन अधिक शांतिमय, अधिक सुखमय हो, मगर नतीजा बिलकुल उल्टा हुआ। मैं तो कभी-कभी हिंदूस्तानियों के इस सिद्धांत को लालच की नजर से देखता हूं कि औरतों को सब सुख दो- पर, आजादी कभी न दो।''[23] वहीं इस व्यवस्था और विजन को कड़े शब्दों में स्त्रियां प्रतिवाद भी करती दिखाई गयी हैं। मिसेज यंग कहती हैं कि -''आखिर इन पुरुषों को किस पापी परमात्मा ने हम स्त्रियों को परतंत्र रखने का अधिकार दिया है? प्रकृति की जिन विभूतियों से इन पुरुषों का निर्माण हुआ है, आखिर उन्हीं से हमारा भी तो हुआ है?....अगर कुछ विशेष गुण पुरुषों में है, तो नारियों में भी है। ...मैं पूछती हूं, स्त्रियाँ पुरुषों की झकों पर अपनी सुकृति, अपने सुखों, अपनी स्वतंत्रताओं का क्यों बलिदान करें।''[24] इस प्रकार 'उग्र' नें ईसाई स्त्रियों को माध्यम बना कर समाज में स्त्री की स्थिति कैसी होनी चाहिए इस पर बल डाला है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने नारीवादी विमर्श को सन् 1927 ई० में ही नये स्वरूप में दिखाने की सफल कोशिश की थी। उन्होंने मिसेज यंग जैसे महिला पात्रों को 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में लाकर एक नये युग की शुरूआत की है। वहीं भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्रियों को किसी वस्तु से ज्यादा कुछ नहीं समझा गया। भारतीय नारी 'खाया-पिया और फेंक दिया' वाली स्थिति में रहीं हैं। इसीलिए मिसेज यंग कहती हैं कि-''यदि पुरुष हम औरतों को केवल एक वसंत तक सूंघने और गले में डाल रखने लायक जूही की माला समझेंगे, और बाद में अपने रसोई घर के कूड़ाखाने में फेंक देने को तैयार रहेंगे, तो हम भी, उन्हें ठगने, बहकाने और मतलब का कठपुतला बनाने से बाज नही आयेंगी। या....क्या हम ऐसी विशेषताओं, ऐसे महत्वों को लेकर चाटेंगी, जिनके कारण हमारा जीवन पशुओं, कैदियों की तरह हो जाए? छिः नामुमकिन है।''[25]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के नारी पात्र बहुत ही मुखरित एवं चालाक किस्म के हैं। दूसरी तरफ प्रगतिशील पात्र मिस्टर यंग भी हैं, जो पति-पत्नी के संबंधों के स्वतंत्र यौन संबंध

ों को वर्दाश्त नहीं करते। वे कहते हैं-''अब मैं अपनी स्त्री के विरुद्ध शिकायतें-एक भले आदमी की हैसियत से नहीं सुन सकता। मैंने निश्चय किया है कि, बल्कि अर्जी भी दे दी है, मैं शीघ्र ही स्वदेश जाऊंगा-और इस झगड़े का फैसला ही करके लौटूंगा!...मैं अपनी वर्तमान स्त्री को तलाक दे दूंगा''[26] यही है....पुरुषवादी समाज की विश्वस्तरीय मान्यताएं, जिसमें सिर्फ औरत ही व्याभिचारी कहलाने की हकदार है। स्वयं पुरुष चाहें, जितनी रखैल या वेश्याओं से शारीरिक संबंध स्थापित कर लें, वह दुराचार का दोषी नहीं होता है। इन्हीं कुप्रवृतियों से दो-चार होने की सफल कोशिश 'उग्र' ने की है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने ईसाई पात्रों की मानसिक दशा को बड़ी कुशलता से चित्रित किया है। अनाथ रधिया की जिंदगी पर पादरी जानसन की कारुणिक भाव भंगिमा कुछ इस प्रकार है-''बच्ची तो बड़ी सुंदर है। दया आती है इसकी अभागिनी माता पर! हृदय उमरा आता है, इसके अभागे पिता की परिस्थिति पर! रोने को जी करता है, इस सुकुमार फूल के दूर्भाग्य पर।''[27] ईसाई मत के प्रचारकों ने गरीब बेसहारा लोगों के प्रति ही अपनी दया दृष्टि दिखाई है, जिसे 'उग्र' ने 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में भी समुचित स्थान देकर अछूत समाज के पात्रों की मानसिक अवस्था को दिखाने का प्रयास किया है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की दृष्टि में स्त्रियां पुरुषों के समान किसी को भी अपने शोषणवादी गिरफ्त में ले सकती हैं। ऐसी एक 'स्त्री-स्वातंत्र्य-समर्थिनी समिति' है, जिसमें अपने नियम कानून के तहत पुरुषों को समझौता करने पर विवश करती है। इस संस्था का प्रतिनिधित्व प्रत्येक युवा स्त्री-पुरुष ही करते हैं, जो आधुनिक मानसिकता से लिप्त हैं। इस संस्था की सदस्य स्त्रियां कहती हैं कि-''अंधा ही रहने पर पुरुष अधिक आकर्षक होता है। जैसे हो, वैसे ही रहो! मैं आंखो वाले पुरुषों को प्यार नहीं करती।''[28]

धार्मिक प्रवृत्ति के पात्र

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने धर्माधिकारियों के मनःस्थिति से भी परिचय कराया है। मनुष्यानंद वही कहता है, जो धर्म के मठाधीश कहते आए हैं-''तुम्हारा रोल, तुम्हारा पार्ट, दांत किटकिटाना और रोना और हत्या करना और किसी मुट्ठीभर के पंचतत्व के पुतले के लिए जीवन को नरक बना डालना नहीं है।''[29] नश्वर शरीर के गतिविधियों पर दंभ भरना उचित नहीं है, क्योंकि मनुष्य की अंतिम परिणति है-मिट्टी में मिल जाना।

'उग्र' ने उच्च समाज की कुंठित, ढ़ोंगी एवं कुप्रवृति संबंधी विचारों को चुनौती देने के लिए साहसी पात्रों का भी सृजन किया है। इन्हीं पात्रों में से मनुष्यानंद गांधीवादी (प्रतिनिधि) पात्र है, जो यह कहता है कि-''मैं अपनी आंखों के आगे तुम्हे (उच्च लोगों में) इन अछूतों के आगे 'ताथेई' नचाकर दम लूंगा। कर्मो में अक्सर महानीच होते हुए भी तुम ढ़ोंगी 'उच्चों' की सारी हेकड़ी निकाल दूंगा''[30] 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में बुधुआ ऐसा पात्र है, जिसको जीवन की सारी विपदाएं, देखने और भोगने को मिली हैं। उसे जेल जीवन से निजात मिलते ही अपने पुत्री का फिक्र होता है। वह मन ही मन प्रश्नानुकूल हो कर सोचता है कि-''कितनी दूर है पादरी साहब का वह बंगला? वह मेरी लड़की मुझे लौटा देंगे न? न लौटाएंगे, तो मैं तबाह हो जाऊंगा। मेरी बुढ़ौती बिगड़ जाएगी।''[31] जीवन के अंतिम पड़ाव में प्रत्येक मां-बाप को अपने बच्चों के सहारे की उम्मीदें लगी रहती हैं, परन्तु बुधुआ का इस दुनिया में रधिया को छोड़कर कोई दुसरा नहीं है। वह बाप के प्यार को रधिया के लिए नहीं उड़ेल सका। वह रधिया के किस्मत को कोसता रहा-''हाय मेरी बदनसीब रधिया''[32s] और अपने पतले दिन की याद करता रहा।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने दलित नारी को शिक्षा के द्वारा बदलने का प्रयास किया है, किंतु सच्चाई बिलकुल अलग है। आज स्त्री शिक्षा का ग्राफ पिछड़ेपन के गर्त में ही है। रधिया भंगिन की मिशनरी शिक्षा ने हाव-भाव, बोल-चाल सभी में परिवर्तन ला दिया है। वह स्वयं बुधुआ जैसे बुद्धु बाप से कहती है-''हम को? मुझको मांगता है? नाः नाः, तुम्हारे साथ मैं नहीं जाएगा। अभी मेरा बाबा मुझको मांगने आएगा। वह नैनी जल में है।''[33]

रधिया सुंदर है, सौम्य है, शालीन है और विद्रोही भी है। उसे उत्श्रृंखल बातों से परहेज है, क्योंकि वह डेविड द्वारा मिठाई खिलाने के प्रयास को लेकर भड़क उठी ''डेविड ने उसे कुछ छेड़ दिया! बस, वह तो आग हो उठी, उसने दसो थप्पड़ उस युवक के मुंह पर जमाए। बड़े जोर से चिल्ला पड़ी। रोने लगी। इसने मेरी बेइज्जती क्यों की? इसने धोखे से अपमानित क्यों किया?''[34] पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ऐसे पात्रों को भी लाए हैं, जो अछूत समाज की नारकीय जिंदगी के लिए जिम्मेदार हैं। जिसे पुलिस महकमा के नाम से जाना जाता है। 'उग्र' लिखते हैं कि-''पुलिस इनसे मिलकर चोरी कराती है, हिस्सा लेती है और फिर बेचारों को जेल की जाल में बांध देती है।''[35] वैसे आज भी पुलिस समाज की छवि ऐसी ही है। देश को पचपन वर्ष आजाद हुए हो गए, पर चोरी, शोषण, लूट-खसोट का दायरा बढ़ता ही जा रहा है। इस व्यवस्था से 'उग्र' भी नहीं बच सके हैं।

मनुष्यानंद जैसे पात्र समाज के हाशिए पर चले गए लोगों (दलित-आदिवासी) के उत्थान का दृढ़ संकल्प और उत्तरदायित्वबोध का अनुभव कराते हैं। जिनका संपूर्ण जीवन ''किसी विशेष स्थान पर नहीं, कभी जंगल में और कभी समाज के शब्दों में, जंगलियों में''[36] के इर्द-गिर्द जीया है। और उनके कटु सत्य को जानने-समझने का प्रयास किया है। कहीं-कहीं मनुष्यानंद अतिमानव का रूप ग्रहण किया है। मनुष्यानंद कहता है कि-''मैं चाहता हूं कि देश के अछूतों में किसी तरह जीवन-जागरण का मंत्र फूंका जाय। मैं बहुत दिनों से इन गरीबों के लिए कुछ न कुछ करने की सोच रहा था और सोच रहा हूं। इधर जब से बुधुआ को जेल हुई तब से तो मैं बड़ी लगन से किसी ऐसे मार्ग की खोज में हूं जिसपर चलाकर, परमात्मा के इन अपमानित बच्चों को सुखी कर सकूं।''[37] इस कथन पर गांधीवादी विचार का प्रभाव देखा जा सकता है। 'उग्र' ने महात्मा गांधी के अछूतोद्धार कार्यक्रम में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया था और गांधी के साथ-साथ गांवों-कस्बों में दलितोद्धार के लिए भ्रमण किया था। इसका प्रभाव 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में एक वफादार जानवर स्पाई (कुत्ता) को बड़ी सहजता से संवेदनशील मानव की शक्ल दी है। स्पाई रधिया से बहुत प्रेम करता है '' वह न जाने क्यों-राधा को प्राण से भी बढ़कर प्यार करने लगा।''[38] इस कुत्ते से घनश्याम जैसे लोग भी सहमते रहे-''अरे, ऐसा झड़पान देगा उसका कुत्ता कि आशिकी की नस ढ़ीली हो जाएगी?''[39] समाज के छद्म एवं मनचले पुरुष सुंदर एवं यौवन से परिपूर्ण लड़कियों को पर्दा-बेपर्दा दोनों रूपों में शोषण ही कलुसित प्रवृति रखता है-''यह तो ईसाइयों की तरह रहती है। इनके पर्दा नहीं है।''[40] मगर हवसदिली रखने वाला कुटिल पुरुष का जबाब राधा के द्वारा ही संभव हुआ है-''बस! और आगे बढ़ोगे तो मैं तुम दोनों के सर पर झूल जाऊंगी। खबरदार! डोण्ट कम! गो- -गो!.....रूक जाओ, मैं झूल जाऊंगी! मैं तुमसे डरने वाली नहीं।''[41]

'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में मनुष्यानंद का रूप दमित-वंचित समाज के प्रति प्रतिबद्धता के साथ उभरा है। वह अछूतों को चेतनामय करने की कोशिश करता है-''अगर तुम अछूत अपने कमजोरियों को दूर कर एक हो जाओ तो तुम भी संसार के अच्छे से अच्छे लोगों में आदर पाने के लायक हो सकते हो। तुम अछूत बने हो अपनी लापरवाही से। नहाते तुम नहीं, अपने शरीर को धोते तुम नहीं, हमेशा गंदगी से लिपटे रहते हो ऐसी हालत में रहने वाला, समाज को अछूत ही समझा जाएगा। फिर भले ही वह संसार के किसी भी

भाग में क्यों न पैदा हुआ हो।''[42] उपन्यास में मनुष्यानंद का उत्तराधिकारी के रूप में बुधुआ (बुद्धराम चौधरी) के चरित्र को 'उग्र' ने सफलता से चित्रित किया है। बुद्धराम चौधरी कहता है कि-''हमें नशा की चीजों को काम में लाना बंद कर देना चाहिए, आपस में गाली-गलौज और रोज-रोज की लत्तम-जुत्तम फौरन रोकना चाहिए। चोरी करना और अपनी ही बिरादरी और मुहल्ले की पराई बहु-बेटियों पर बुरी नजर डालना बंद कर देना चाहिए। बच्चों को हजार उपाय करके भी, कोई हुनर-चाहें वह बेना या सूप या पंखा बनाना ही क्यों न हो-सिखाना चाहिए। बन पड़े तो उन्हें पढ़ाना ही सिखाना चाहिए।''[43]

'बुधुआ की बेटी' में फेंकुआ जैसे पात्र को भी लाया गया है, जिन्हें अपने एवं अछूत समाज की जरा सी सुध नहीं है, क्योंकि उन्हें नीच कर्म पर ही भरोसा है। वह कहता है-''अघोड़ी होगा अपने घर का, अघोड़ी क्या उसके लिए हम अपना रोजगार छोड़ देंगे?''[44] उसे यह समझ में नहीं आ रहा है कि 'जीवन भर दूसरों का पाखाना फेंक कर गुजर करना तो नरक भोगने के बराबर है। वहीं नसेरवा जैसे पात्र हैं, जो मनुष्यानंद के एक-एक बातों को अमल करके अपने नये जीवन की शुरूआत करने में विश्वास रखते हैं। वह कहता है कि -''मैं तो अघोड़ी बाबा का चेला हूं, मैंने ताड़ी छोड़ दी है, दारू छोड़ दी है, कल परसो तक दो-चार चीलम और जिसने न पी गांजे की कली, उस लड़के से लड़की भली के-मजे से फूँक कर इसे भी छोड़ दूंगा।.....मैं न खुद चोरी करूंगा और न, भरसक, किसी को करने दूंगा।''[45]

उच्च समाज

'उग्र' ने उच्च समाज के तथाकथित लोगों के दंभ को तथा मनचले पात्रों की मानसिक दशा पर स्पष्ट एवं बेबाक टिप्पणी की है। गुलाबचंद की मनोदशा 'चोरी और सीनाजोरी' जैसी है। वह कहता है कि-''बेसबब उसने अपमान कितना किया। हासिल कुछ भी नहीं, आंखे भी मजे में न सिंक सकीं-और अपमान, बेइज्जती और नुकसान हुआ दुनिया भर का। ऐसा गुस्सा आता है उस छोकरी पर कि अगर इस वक्त मिल जाये तो, मारे थप्पड़ों के मुंह लाल कर दूं।''[46] इन दिलजलों को मालूम नहीं है कि-''आशिकी के रास्ते के दोनो ओर लात-जुतों और अपमानों की खेती हमेशा लहराया ही करती है।''[47]

आज परिस्थितियां बहुत बदल चुकी हैं। 'उग्र' के जमाने में किसी लड़की का विद्रोही रूप देख पाना संभव नहीं रहा है, क्योंकि स्त्रियों को ऊँचे स्वर में बोलना सामाजिक इज्जत

पर कुठाराघात जैसा था। लड़कियों की किसी फूलझड़ी या मोम के रूप में ही छाप बनी रहती थी। लेकिन रधिया का प्रतिवाद युवा पीढ़ी के सोहदों को भाया नहीं। तभी घनश्याम ठंडी सांस खिंचता हुआ कहता है-

"मेहत्र्य की तुझसे तवक्का थी
सितमगर निकला!
मोम समझे थे तेरे दिल को
सो पत्थर निकला!"[48]

आदर्श व्यक्तित्व का गठन

मनुष्यानंद का चरित्र करिश्माई विचारों, व्यवहारों आदि से परिपूर्ण है। उसी के पुण्य व प्रताप से बुधुआ-'बुद्धराम चौधरी' का ताज पहन सका और न जाने कितने अछूतों को नरक से निकाल कर सम्मान जनक स्थिति में लाने का प्रतिभागी बना। यही वजह है कि बनारस की गलियों, चौराहों, भंगी बस्तियों में लोग कहते फिरते मिल जाते कि-"मनुष्यानंद के प्रसाद से वह (बुधुआ) पत्थर से पारस हो गया है। अघोड़ी ही के कारण वह फाँसी से बचा, अघोड़ी ही के कारण अपनी छबीली लड़की के साथ पादरी जानसन के यहां आराम की नौकरी कर रहा है, अघोड़ी के ही कारण पादरी ने उसे और उसकी लड़की को दुर्गाकुण्ड के पास जमीन खरीद कर दे दी है, और अब, अघोड़ी ही के कारण अछूतों का नेता बना जा रहा है।"[49]

अघोड़ी मनुष्यानंद के कर्तव्य परायण के आगे अछूत समाज नतमस्तक है। अछूत समाज का एक वृद्ध पात्र कहता है-"बाबा साहेब, आप मुझे कोई ऐसी दवा दें, जिससे मैं जल्द से जल्द मर जाऊं, जिससे जीवन के परदे में छिपी नारकीय यंत्रणाओं से छुटकारा पाऊं।"[50] यह कथन अछूतों के दिलों में मनुष्यानंद का ईश्वरीय स्थान सुनिश्चित करता है। महात्मा गांधी द्वारा चलाये जा रहे अछूतोद्धार कार्यक्रम में समाज के सभी लोगों का भी प्रतिनिधित्व रहा है। 'उग्र' ने उच्च वर्ग द्वारा अछूतों के उत्थान के लिए किए गये प्रयत्न को बहुत कुशलता से शब्दबद्ध किया है। उन्होंने लिखा है कि-" वे भी उन्हीं की संतान हैं, जो तुम्हे युगों से नरक में धकेलते चले आ रहे हैं। फिर भी वे अपने पूर्वजों के पापों का प्रायश्चित, तुम्हारे उत्थान में सहायक होकर, तुम्हारी सेवाएं कर, उत्थान करना चाहते हैं। हम

शीघ्र ही, तुम अछूतों के लिए कोई कारखाना, रोजगार खोलना-चलाना चाहते हैं। तुम्हारे बच्चों के लिए विद्यालय खोलना चाहते हैं।''[51]

समाज में ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो धन दौलत के बल पर सब कुछ हासिल कर लेना चाहते हैं। 'उग्र' ने ऐसी कुप्रवृतियों को अपनी खुली आंखो से देखा और महसूस किया था। उन्होंने घनश्याम जैसे निम्न स्तरीय पात्रों से यह कहलवाया है कि-''ना! ना! वह (रधिया) खूबसूरत है तो क्या, जवान है तो क्या-जिसके पास पैसे हैं उसके लिए ऐसी खूबसूरती और ऐसी जवानी, आज के बाजार में भरी पड़ी है।''[52]

रधिया का पालन-पोषण ईसाई रीति-रिवाज से हुआ, जिसमें अछूतपन के लिए जगह नहीं है, परन्तु रधिया अछूत और अपमान की जिंदगी जीने वाले भंगी समाज को अवश्य जानती समझती है। तभी वह कहती है कि-''पर, अनादर भंगी जो हैं। आप लोग तो ऊची जात के भले आदमी, यहां के रईस, मालूम पड़ते हैं। भला, आप मेरे फादर से कैसे मिलेंगे? आप अपवित्र नहीं हो जायेंगे? शहर के लोगों पर मालूम होने पर, आप पर नाराज नहीं होंगे?''[53]

पुरुषवादी समाज नारी को हमेशा से भिन्न-भिन्न तरीकों से रिझाने का प्रयास करता रहा है। कभी भौतिक सुख-सुविधाओं का लालच दिखा कर, तो कभी स्त्री होने का एहसास दिला कर। पुरुषों की सोच में ''प्रिय! क्षमा करना, मैं इस कूंज में तुम्हे चुमना चाहता हूं, वैसे ही जैसे प्रकाश इस हरे भरे वातावरण को, मधुकर इन चन्द्रिका धवल मालतियों को चुप रहे हैं।''[54] ये पुरुष स्त्री के यौवन प्रवृति की याद दिलाकर शोषण तंत्र को चलाए हुए है। 'बुधुआ की बेटी' का पात्र घनश्याम इसी उधेड़-बुन में सोता है, जागता है। वह रधिया को बहलाने-फुसलाने का हर संभव प्रयास करता हैं। वह- ''जो कुछ भी आवश्यक समझता, मंगा रखता, फल-फूल, इत्र-रूमाल, आईने, ग्रामोफोन, हरमोनियम और भिन्न-भिन्न रंग के रेशमी सामानों से उन दिनों, उसने उस बगीचे के बंगले को भर रखा था।''[55] उसने रधिया को विवाह की आशा दिलाकर देह के दायरे में बंधी नारी को शोषण का अभिन्न अंग बना लिया था। इसी लोलुप बातों में फंसकर राधा सारी दुनियां को भूलाकर, यहां तक की अपने बाबा बुधुआ को भी छोड़कर घनश्याम के छद्म प्रेम जाल में हिलोरें लेती रही।

राधा और स्पाई (कुत्ता) का प्रेम बहुत ही गहरा था। स्पाई राधा के बिना एक पल भी चैन से नहीं बैठता था, क्योंकि रधिया के जन्म के समय ही पादरी के घर की कुतिया ने स्पाई

जैसे वफादार बच्चे को जन्म दिया था। तभी से दोनों एक दूसरे के साथ पले-बढ़े और उनमें प्रेम-भाव बना रहा। रधिया की अनुपस्थिति में स्पाई बड़ा परेशान रहता था। इसका उदाहरण बुधुआ के इस कथन-''मैं भी तो ताज्जुब में हूं 'सिपाही'-न जाने आज वह (रधिया) कहां रूक रही! तुम भूखे हो क्या?''[56] स्पाई का मूक जबाब कि ''हां भूखा तो कभी से हूं, मगर कहां है, वह हमारी सुंदरी अन्नदात्री''[57]

आज युवा पीढ़ी के दिलों में प्रेमी-प्रेमिका का नाम लेते ही धड़कन बढ़ने लगती है। रधिया भी घनश्याम के प्रेम विवाह के झांसे में फंसकर अपने को कोसती है। परन्तु घनश्याम मिठी-मिठी बातों में रधिया को उलझाकर कहता है-''हमारा ब्याह तो हुआ ही है। रहीं कहीं चलने की बात, सो, उसी की तैयारी में तो आजकल जी जान से जुटा हूं। घबराती क्यों हो इतना?''[58] इसी तरह की प्रवृति गुलाबचंद जैसे पात्रों में भी है, जो रोजाना बनारस के दाल मंडी के इर्द-गिर्द मुंह लगाये रहता है, वह सभी औरतों को वेश्या समझ कर ही टूट पड़ता है, ऐसा ही एक दिन रधिया के साथ हुआ, परन्तु रधिया का स्पष्ट प्रतिवाद गुलाबचंद को सकते में डाल दिया। रधिया ने कहा-''ऐसी हिम्मत तेरी! तू आदमी है या सूअर का बच्चा।''[59]

दलितों के जीवन के विविध आयाम

'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में दलितों की जिंदगी के यथार्थ-बोध को नये-पुराने लोगों की मंडली के तर्क-वितर्क से स्पष्ट रूप में पेश किया गया है। एक अनाम पात्र ने सादगी भरे शब्दों में बोला-''बेसक, उनकी पुकार न सुनकर हमेशा से हम उन पर अत्याचार करते आए हैं। इन पददलितों को क्रांति करने का, बलवा करने का और युद्ध करने का जन्मसिद्ध अधिकार है। हमें उनकी ईमानदारी से भरी मांगों के आगे झुकना चाहिए।''[60] यह उच्च समाज के पढ़े-लिखे लोगों की परिर्वतनवादी दृष्टि है। यहां अनाम पात्र परंपरागत संस्कार में पल कर भी अछूतों के मांगों का सत्कार चिंतक सिद्ध हुआ है।

समाज के अधर्मी लोगों ने ही धर्म का ठेका ले रखा है। इन विचारों को सनातन ध र्म, आर्य समाज और हिंदू महासभा जैसी संस्थाएं इसके व्यापक फैलाव में लगी हुई हैं। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' इन सारी बातों से वाकिफ थे। वे जानते थे कि इन संस्थाओं का उद्देश्य समाज या अछूतों का उद्धार करना नहीं है। अपितु यह कहना है कि -''मारो इन

साले भंगी-समर्थकों को! अब बिना युद्ध किये सनातन धर्म, आर्य जाति और मंदिरों का कल्याण नहीं।''[61] और यही प्रवृति आज भी दलित और सवर्ण के बीच मौजूद है। इसी तरह आज एन० जी० ओ० चलाए जा रहे हैं। जिन्हें दलितों का न तो उद्धार करना है, न न्याय दिलाना है। बस! पैसे बनाने के लिए विभिन्न एन० जी० ओ० चल रही हैं।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने दलित-नारी विमर्श के विकृत चेहरे को 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में दिखाने का प्रयास किया है। रधिया का सब कुछ लुट जाने के बाद वह पुरुषों के धोखेबाज चेहरे को पहचान पायी है। वह आत्मग्लानि के साथ कहती है-''आज मैं इस ध ोखेबाज पुरुष के प्रेम में पड़ने के कारण आवारा हो गई-वेश्या हो गई? मैं? जिसके बाप ने अपनी औरत पर जरा सी आंच आते ही दो-दो खून कर डाले थे! हाय! न हुए मेरे फादर।''[62] इन्हीं विचारों को घनश्याम के सामने रख कर देखा जा सकता है, जिसने भोली रधिया को अपनी हवस का शिकार बनाया और वेश्या बनने के लिए विवश किया। रधिया का तेजस्वी स्वर उपन्यास के 'अबला राधा' शीर्षक में देखने को मिलता है। घनश्याम जैसे पात्रों के बारे में रधिया कहती है कि-'' तुम्ही मुझसे सबब पुछते हो? इसका सबब अपनी धोखेबाजी से, दगेबाजी से, शराब और रंडीबाजी से क्यों नहीं पूछते? मेरी मां! ऐसी पापी तुम निकले घनश्याम! ऐसा तुमने लुटा घनश्याम! आह! तुमने तो मेरी दिनों दुनिया में ही आग लगा दी!''[63]

मनुष्यानंद ने अछूत समाज को चेतनामय बनाने का संकल्प किया है। अछूतों को उबारने की चेतना का प्रभावी रूप, तब देखने को मिला, जब सभी दलित आंदोलन करने के लिए एकताबद्ध हो गए। उन सभी ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि-''क्यों साफ करें आदमी का पाखाना? जिसका मल हो वही उसे फेंके भी क्यों नहीं? अपने पापों की गठरी दूसरे के सिर पर लाद कर आदमी किस विशेष अधिकार से सुखी होना चाहता है? हम अब मैला नहीं फेंकेंगे-छिः छिः!! बड़ा गंदा काम है। इसी से हमारे लोक-परलोक दोनों बिगड़ते हैं।''[64] वहीं मरण सेज पर लेटे हुए बुधुआ को अपनी प्यारी सुकोमल बेटी रधिया के बिछुड़ने की याद सताती है। यह सभी मां बाप की संवेदना का हिस्सा है, जिसने पाल-पोस कर बड़ा करने एवं व्यक्तित्व का धनी बनाने में एक-एक पल को खपाया है। बुधुआ इसी मानसिक यातना में रधिया को याद करता है-''अरे भगवान! इस बुढ़े, इस बेसहारे और असहाय हृदय को उजाड़ कर तू कहां भाग गयी बेटी! क्या तेरे इस भागने के लिए ही मैं जेल से, महापाप कर, छूट भागा था? तेरे लिए मैं पाप कर जेल से दौड़ा-दौड़ा प्यारी दुनिया में आया और तू ठगिनी

मेरी सारी दावा दहका कर भाग गई! हे भगवान! मैंने तेरे लिए पाप क्यों किया।''[65]

'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में ब्राह्मण पुजारियों की ठेकेदारी पर अछूतों ने पानी फेरने को ठान लिया है। वहीं सदियों से मंदिरों में पूजा पाठ के नाम पर ढोंग करते आ रहे पापियों को अपवित्र होने का डर था क्योंकि अछूत लोगों के साथ मनुष्यानंद बाबा विश्वनाथ के मंदिर में प्रवेश करना चाहते हैं। यह ब्राह्मण पोंगापंथियों के लिए अशुभ समाचार है। तभी एक ब्राह्मण पुजारी कहता है कि-''अजी, तो लाशें उठ जाएंगी। हम अपने जीते जी बाबा के मंदिर को अशुद्ध न होने देंगे। यह हमारी रोजी का सवाल है.....ऐसे मौके पर तो अघोड़ी तो अघोड़ी हैं, परमात्मा भी आए तो, बिना दो-चार डंडे लगाये हम मानने वाले नहीं हैं।''[66] 'उग्र'-इन ब्राह्मण पुजारियों के मंदिर को क्रय-बिक्रय का केंद्र बना कर रोजी-रोटी के सवाल से जोड़कर देखते रहे हैं, ये धर्म के पूजारी मेहनत मजदूरी करने से कतराते रहे हैं। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' समझते रहे हैं कि सदियों से ब्राह्मण समाज ठगी का काम करता आ रहा है-वह भी धर्म के नाम पर सिधी-सादी जनता को भ्रम में डालकर, अछूत बनाकर, शोषण का जरिया बनाये हुए हैं।

'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में धर्म के नाम पर दुराचार फैलाने का हस्र ऐसा हुआ कि लियाकत हुसैन जीवन के अंतिम पड़ाव में अंधा हो गया। वह दर-दर की ठोंकरे खाने को मजबूर था। वह कहता-''आका! तुमने मेरी आंखे भी छीन ली और मुझे उस भिखारी लड़के का गुलाम बना दिया, जो चार दिनों से मुझे बीमार छोड़कर न जाने कहां गायब है? हाय! अब मैं जी क्यों रहा हूं? आह! कहां है मेरी मौत? अब खत्म करो! ऐ मेरे खुदा! इस दोजखी जिंदगी का किस्सा अब खत्म करो! बेशक-बेशक, मेरे गुनाह बहुत बड़े-बड़े हैं। बेशक मुझे घुल-घुल कर और तड़प-तड़प कर मरना चाहिए। मैंने सैकड़ों भोले दिलवालों को, अपने मन के शैतान के लिए, ठगा है-मगर, मेरे मालिक! अब तो बहुत सांसते हो चुकी मेरी।''[67] जवानी के दिन में किए कुकर्मो का फल बुढ़ापे में फलता है, ऐसी कहावतें समाज में प्रचलित हैं, शायद यही-लियाकत हुसैन के साथ भी हुआ।

अछूत समाज में बुधुआ का नाम एक फरिश्ता के रूप में याद किया जाता है। वहीं गांधीवादी विचारों से परिपक्व मनुष्यानंद हाशिए के लोगों का नेतृत्व करता है। बुधुआ का अछूत समाज के प्रति हमदर्दी की असीम संभावनाएं भी देखने को मिलती हैं। एक अछूत व्यक्ति कहता है कि-''आह! कैसे अच्छे थे चौधरी बुद्धराम! हमारे उद्धार के लिए उन्होंने

क्या-क्या कष्ट नहीं उठाए।''[68] अछूत समाज की राधा स्वयं के किये कर्मो पर अपमानित है। वह आत्मग्लानि से भर उठी है, क्योंकि रधिया की सुकुमार आकांक्षाओं का पुरुषवादी समाज ने निर्दयता पूर्वक दमित किया है, शोषण किया है। वह अपने को समाज में जीने का अधिकारी न मानकर उपन्यास के 'यह कौन है?' शीर्षक में आत्महत्या करने का प्रण करती है। वह कहती है-''मैं तो अब मरने जा रही हूं। सिवाय आत्महत्या के मेरे लिए और कोई चारा भी नहीं हैं।''[69] राधा की सुंदरता पर मर मिटने वालों में फ्रेंच व्यापारी का पुत्र जॉन विक्टर भी है, जो पागल होकर रधिया को ढूंढता फिरता है। वह मिस राधा के प्रेम में विफल होकर आत्महत्या कर लेता है। मगर राधा के जीवन के कटु अनुभव एवं निष्ठुर प्रवृति ने पुरुषों का एक-एक कर शोषण करने का प्रयास करती है। वह बड़े कठोर शब्दों में घोषित करती है कि-''मैं, तो किसी भी पुरुष से प्रेम नहीं करती। बल्कि, मैं पुरुषों को अपने झूठे प्रेम में फंसाकर पागल बनाया और बर्बाद किया करती हूं। इसी लायक होते हैं, यह पाजी पुरुष।''[70] रधिया नारी विमर्श के नये रूप को अंजाम देती है। वह सभी स्त्रियों का आह्वान करती है कि-''स्त्रियों को चाहिए कि पुरुषों का हृदय अपने पैरों तले दबाकर कुचल दिया करें, जैसे उन्मथ हथिनी अपने प्रचंड पैरों को नीचे बतासे को कुचले। यह पुरुष-जाति धोखेबाजों, अत्याचारियों और कायरों की जाति है-जो सदा से हम स्त्रियों को फुसला-फुसलाकर नष्ट करती और हमारे प्राणों को घास-भूसे की तरह पशुता से कुचलती आ रही है। आखिर हमारे भी हृदय हैं, हममें भी आंखें बदलकर बदला लेने की शक्ति है।''[71]

'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में पात्रों का स्वरूप कई रूपों में गढ़ा गया है। मनुष्यानंद का चरित्र गांधीवादी चेतना के इर्द-गिर्द विचरण करता रहता है, वहीं बुधुआ का व्यक्तित्व निर्माण परिवर्तनगामी दिखता है और वह अछूत समाज के अगुआ के रूप में स्थान पाता है। घनश्याम और गुलाबचंद जैसे पात्र युवा पीढ़ी के मनचले लोग हैं, जिनका व्यावहारिक आधार यौवनानुभव से आह्लादित दिखाया गया है। वहीं धर्म के पुजारियों की छवि अवैज्ञानिक विचारों पर केन्द्रित रही है। मिस्टर जानसन और यंग जैसे प्रगतिशील ईसाई पात्र भी हैं, जो अछूतों को गले लगाते हैं, परन्तु नारी की स्वतंत्रता की भारतीय मानसिकता को उचित ठहराते हैं।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपने उपन्यास में दलित और नारी पात्रों को नवचेतना के धरातल से रू-ब-रू कराया है। इस उपन्यास में स्त्री-दलित विमर्श का पूरा-पूरा स्थान मिला है। राधा और मिसेज यंग जैसे नारी पात्र भी हैं, जिन्हें पुरुष मानसिकता को पहचानने

में देरी हुई। बहीं वास्तविक वस्तुस्थिति से आत्म साक्षात्कार भी हुआ। रधिया के जीवन में कटु अनुभवों का साया सदा चलता रहा। पुरुषप्रधान समाज की धोखेबाजी और अत्याचारी के माहौल ने रधिया को यह कहने के लिए मजबूर किया कि-''मैं तो नफरत करती हूं पुरुषों की इस राक्षसी जाति से।''[72] इस प्रकार पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में अछूत और नारी, पण्डे और पुजारी, हिंदू, मुस्लिम और ईसाई, आदि पात्रों के द्वारा समाज की सम्पूर्ण विद्रुपताओं पर स्पष्ट टिप्पणी की है।

संदर्भ सूची

१- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-ख
२- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१
३- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१
४- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-३
५- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-३
६- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-३
७- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-४
८- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-४
९- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-४
१०- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-५
११- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-११
१२- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-११
१३- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२६
१४- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२८
१५- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-३५
१६- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-३९
१७- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-४७
१८- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-४९
१९- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-८२
२०- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-८४
२१- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-५३
२२- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-६०
२३- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-६१
२४- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-६१
२५- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-६२
२६- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-६७
२७- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-७४
२८- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-८४
२९- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-८७
३०- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-९७
३१- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१००
३२- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१००
३३- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१०४
३४- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१०८-१०९
३५- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१०७
३६- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१०९
३७- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-११०

३८- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१२१
३९- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१२४
४०- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१२५
४१- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१२५
४२- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१२८
४३- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१२८
४४- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१३०
४५- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१३१
४६- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१३६
४७- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१३६
४८- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१३७
४९- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१३९
५०- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१४५
५१- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१४७-१४८
५२- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१५३
५३- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१५०
५४- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१६५
५५- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१६६
५६- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१७१
५७- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१७१
५८- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१८२
५९- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१८४
६०- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१८७
६१- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१८९
६२- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१९६
६३- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-१९८
६४- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२०१
६५- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२०३
६६- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२०७
६७- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२१४
६८- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२१८
६९- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२१३
७०- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२२२
७१- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२२२
७२- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या-२२२

अध्याय:पांच

बुधुआ की बेटी उपन्यास का शिल्प विधान

- कथानक का गठन
- संवाद-योजना
- भाषा-शैली
- अछूत समाज

उपन्यास विधा में भाषा का अनुकूल प्रयोग कर पाना आसान काम नहीं है। विशेष तौर से यथार्थ के सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय की अभिव्यक्ति को शाब्दिक प्रमाणिकता प्रदान करने में क्योंकि कथा-साहित्य का उद्‌भव ही यथार्थ, सूक्ष्म और अनुभव सापेक्ष चित्रण के लिए ही हुआ है। ऐसे में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जैसे लेखकों का शिल्प-सौंदर्य निर्धारण कर पाना बड़ा मुश्किल काम है। शायद इसलिए कि वे हमेशा अपने कलात्मक सृजन की कसौटी को सामाजिक परिप्रेक्ष्य के अनुरूप बदलने की कोशिश करते रहे हैं। 'उग्र' के साहित्यिक योगदान को ध्यान में रखकर उपन्यासकार गिरिराज किशोर ने लिखा है कि ''अन्य विधाओं से हटकर यथार्थ का सम्पूर्ण दबाव कहानी और उपन्यास पर आता जा रहा है, इसलिए यह विधा समकालीन संग्राम और संघर्ष की विधा बनती जा रही है। उस संघर्ष का स्वरूप क्या होगा, इसका निर्णय कथाकार को समय के संदर्भ में स्वयं करना है।''[1] 'उग्र' ने उपन्यास के कल्पनात्मक साहित्य में भी वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले चरित्रों एवं क्रिया-व्यापारों का कुशल और सटीक प्रयोग किया है, और भाषा, समाज और साहित्यकार के लिए नये शिल्प-विधान को साकार किया है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के उपन्यास लेखन में शिल्प-विधान के विविध आयामों जैसे कथानक का उद्देश्य, पात्रों का चरित्र-चित्रण, संवाद, देशकाल, शैली और भाषा के सूक्ष्म यथार्थ प्रयोगों की उत्कृष्ट मिशाल देखने को मिलती है। उन्होंने समस्याओं की अभिव्यक्ति हेतु, भाषायी आत्मीयता की अर्थवत्ता को सटीक शब्दों में आबद्ध किया है, परन्तु 'उग्र' औपन्यासिक भाषा के प्रयोग में बहक भी गये हैं-''इन्हें लो, जरा मुह का जोबन चमकाओ।''[2] यहां 'जोबन' शब्द वाक्य के अनुरूप अत्यधिक अश्लीलता का परिचय देता है। इसके बावजूद भाषा वैज्ञानिक सच्चिदानंद वात्स्यायन ने लिखा है कि ''संवेदनशील भाषा कभी एक सीधी रेखा में नहीं चलतीं उसके उछाल लेने के भिन्न कोण होते हैं। उनकी सामर्थ्य के अनुसार अधिकतम विस्तार को समेटते हुए अपने ध्येय बिंदू पर लौटती है?''[3] इस तरह से उपन्यास

लेखन की नई शिल्प पद्धति को पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपनाया है।

कथानक का गठन

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के उपन्यास में कथानक के अनेक रूप देखने को मिलता है। इनमें चरित्र प्रधान समाज सामाजिक, धार्मिक राजनैतिक समस्या प्रधान और हाशिए के लोगों से वास्ता रखने वाली विभिन्न समस्याओं से जुड़े ज्वलंत वैचारिक संघर्षों पर आधारित कथानक को आत्मसात् किया है। 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास के कथानक की शुरूआत एक सामाजिक एवं वैचारिक विमर्श के वास्तविक पृष्ठभूमि के साथ होता है। इस उपन्यास में कुल सैंतालीस पत्र हैं, जिसको शीर्षक की भी संक्षा दी गई है। इसमें बुधुआ, राधा एवं मनुष्यानंद के मुख्य कथानक के अलावा मिसेज यंग और मिस्टर यंग के उप कथानक भी उपन्यास में घुलमिलकर विशिष्ट सृजन का परिचय देते हैं। इसमें लेखक का भारतीय एवं यूरोपीय दोनों समाज को चित्रित करने का प्रयास सफल है।

उपन्यास का आरंभ 'रधिया कौन है?' अध्याय से होता है। इसमे गुलाबचंद का कथन-''ओ हो हो हो! तुम रधिया को नहीं जानते?...तब तुमने जमाना को खाक जाना।''[4] यह बातचीत का परिचित जुमला है, जो व्यावहारिक जीवन के साथ-साथ साहित्यिक-सृजन में बहुत ही प्रसिद्ध है। इस कथानक में सहजता का भाव है और गुलाबचंद जैसे युवा पीढी की मनःस्थिति की अभिव्यक्ति भी।

'बुधुआ की बेटी' उपन्यास पत्रात्मक शैली में लिखा गया है। इसके शीर्षक व्यवस्थित क्रम में नहीं है। जिसको उपन्यास की कमजोरी के रूप में देखा जाता है। इस उपन्यास में लेखक द्वारा एक अध्याय से दूसरे अध्यायों में संगति की अनिवार्यता समाप्त कर दी गई है, जो औपन्यासिक हित में नहीं है जबकि कथा-साहित्य की मांग है कि वह क्रमबद्धता, वाक्य संगति की सुव्यवस्थित कथा-भाषा के रूप में उभरे, ताकि पात्रों के जीवन की मूल्यवत्ता स्पष्ट रूप से जीवंत बनी रहे। 'उग्र' के रचनात्मक वैशिष्टय का पता तब चलता है, जब उनके द्वारा लाए गए विषय-वस्तु एवं औपन्यासिक पात्र आज भी समाज की विविध दिनचर्याओं में देखने को मिलते हैं यही है-'बुधुआ की बेटी' उपन्यास का सृजनात्मक मूल्य। 'उग्र' ने 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में कथानकों का प्रयोग अर्थवक्रता के क्रम में किया है। उपन्यास में बुधुआ-सुकली, मिस्टर यंग-मिसेज यंग, कीनाराम। बाद में मनुष्यानंद और उनकी पत्नी, घनश्याम-राधा आदि विभिन्न पात्रों के माध्यम से स्त्री-पुरूष विमर्श का दिग्दर्शन होता है।

गुलाबचंद के साथ-साथ घश्याम भी नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। वहीं उसका पिता बाबूरामजी परंपरा और आदर्श का आवरण लिए कदम-कदम पर युवा पीढी को कुशल मित्र की तरह जीवन के जरूरी नैतिक मूल्यों का एहसास दिलाकर रास्ते पर चलने का मंत्र देते हैं। 'उग्र' ने बुधुआ की बेटी उपन्यास के पात्र बाबूराम जी मरजाद रूपी चेतना को 'पिता-पुत्र' शीर्षक में पिरोया है। यह सभ्य और इज्जतदार परिवार के समाज की मांग भी है और इसी 'मरजाद' को बनाए रखने में होरी जैसे पात्र भी टूट गये थे।

''बेचारा बुधुआ'' शीर्षक में बधुआ के पारिवारिक जीवन की त्रासदी देखने को मिलती है। इस कथानक में बुधुआ के जीवन संगिनी का मर जाना, पहाड़ टूटने के बराबर दिखता है। बुधुआ की पत्नी डाक्टरी इलाज के बिना दम तोड़ देती है। ऐसे में 'कफन' कहानी की बुधिया की याद आ जाती है। जो प्रसव पीड़ा से कराहती पैसे के अभाव में बिना दवा-दारू के दम तोड़ देती है। यह 'उग्र' और 'प्रेमचंद' की दृष्टि में अछूत समाज के जीवन की कारूणिक त्रासदी की समानान्तर अभिव्यक्ति का नमूना है। 'औघड़' , अखाड़े में, कौन रोता है? , किसका बच्चा? अघोरी के पीछे, और 'उत्तरार्ध' शीर्षक में अघोड़ी मनुष्यानंद का संवाद चलता है। इस अध्याय में मनुष्यानंद एक कुशल एवं ईमानदार अछूत समाज का नेतृत्वकर्त्ता एवं अछूतोद्धार के रूप में सामने आता है।

अफवाह, सुकली, छुरा दे! छुरा दे!!, खुन हो गया, बुधुआ का बयान आदि शीर्षक में बुधुआ से जुड़ी प्रत्येक मनःस्थिति का पता चलता है। इसमे बुधुआ एक निडर साहसी, भयानक क्रूरता का चारित्रिक परिचय देता है। इनमें लियाकत हुसैन, रहमान जैसे गलत प्रवृतियों से लैस पात्रों के संवाद पाठक के दिल को दुखित कर देते हैं। वहीं बुधुआ बच गया, बारह बरस बाद, पहली पंचायत एवं दूसरी पंचायत में बुधुआ से जुड़े कथानक में परिवर्तन का स्वर देखा जा सकता है। साथ ही साथ 'उग्र' ने बुधुआ को जिंदादिली एवं संघर्ष निष्ठा के साथ एक कुशल नेतृत्वकर्त्ता के रूप में भी चित्रित किया है। दूसरी तरफ 'उग्र' ने पादरी जानसन, पादरी की राय, राइट का पत्र और 'होमवर्ड बाउराड' शीर्षक में ईसाई पात्रों की वास्तविक गतिविधियों का पर्दाफाश किया। जो अपने को प्रगतिशील विचारों से परिपूर्ण समझने वाले खोखली मानसिकता का दंभ भरते हैं, और नारी स्वतंत्रता प्रदान करने का ढ़ोंग करते हैं। साथ ही 'उग्र' ने गोरे काले की विभेदवादी प्रवृति को यथा प्रसंगानुकूल जगह दी है।

'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में कथानक शिथिलता भी यदा-कदा देखने को मिलती है। इसमें अघोड़ी (मनुष्यानंद) और पादरी जानसन द्वारा उपन्यास की नायिका के जीवन से जुड़ी

घटनाओं को पहले ही बता देना प्रमुख है, जो बाद में रधिया के जीवन में क्रमिक घटता जाता है। पादरी जानसन कहता है-''मैं जानता हूं राधा सुंदर है, आकर्षक है। यदि वह अपने अनपढ़ और कमजोर और गरीब समाज में बिलकुल नगण्य बाप के साथ केवल उसी के सहारे रहेगी, तो बच न सकेगी। धीरे-धीरे बदमाश उसे बालिका से वेश्या और वेश्या से राक्षसी बना देंगे।''[5] या कहना कि ''राधा विचित्र प्रकृति की बालिका है। यदि उसके स्वाभाव का विशेष ख्याल रखे बिना उसको विश्व पथ पर छोड़ दिया जाएगा तो धोखा भी हो सकता है।''[6] यह उपन्यास की कथानक संबंधी कमजोरी है, जो 'उग्र' के लेखन के विपक्ष में जाती है। यदि रधिया से जुड़े समस्त घटनाक्रम स्वतः फलित होता, तो यह निश्चित शिल्प योजना के लिए उचित होता है। यह सारी कमजोरी, झूलेवाली, स्पाई, चारो खाने चित्त, चोट लगी क्या? गुड ईवनिंग मिस, प्रेम अंधा होता है, राधा ला पता! धोखा, अबला राधा, आदि शीर्षकों में नायिका के चरित्रांकन में देखा जा सकता है। इसमें कहीं-कहीं रधिया के विद्रोही तेवर को सफलता पूर्वक वर्णन किया गया है। इन सभी विचारों में नारी-स्वतंत्रता संबंधी बहस को रचनात्मक अंजाम भी मिला है।

'उग्र' गुदगुदी, स्वार्थी घनश्माम, धोखा आदि अध्याय में पुरूषवादी शोषण की उत्छृंखलता का दस्तावेज तैयार किया है। इस संदर्भ में 'उग्र' ने लियाकत हुसैन, गुलाबचंद और घनश्याम जैसे पात्रों को लाकर पुरूषवादी मानसिकता का पर्दाफाश किया गया है। वहीं लेखक ने समर्थक, हड़ताल, युद्ध होगा, घोषणा आदि शीर्षक के अधीन अछूत समाज को नवचेतना से सुसज्जित करने का काम किया है। जिसके अंदर विचार प्रवणता के मर्मस्पर्शी संवादों ने प्रतिवादी, स्वरों को भरा है। इसमें बुधुआ-बुद्धराम चौधरी और मनुष्यानंद एक दलितोद्धार के रूप में दिखाये गये हैं। कटिंग शीर्षक उपन्यास का अंतिम पाठ है। जिसमें नारीवादी चेतना का नवोचित ओजस्वी स्वर दिखायी पड़ता है। इस प्रकार पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने सामाजिक जीवन की अथाह अटूट वेदना के बुनियादी सवालों को 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास के कथानक के माध्यम से चरम् सार्थकता तक पहुंचाने का सफल प्रयास किया है।

संवाद योजना

उपन्यास में कथोपकथन का प्रयोग पात्रों के चरित्र को दर्शाने के लिए किया जाता है। यह नाटकों की संवाद-योजना के अनुरूप होता है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के अधिकांश पात्रों की संवाद-दृष्टि उनकी अपनी एकांगिक बोध नहीं है, बल्कि वर्गीय आधार को भी तय

करता है। 'बुधुआ की बेटी' में गुलाबचंद और घनश्याम का संवाद नई पीढ़ी की स्वच्छंद और यौन लिप्तता का पर्याय बन गया है। गुलाबचंद का एक कथन-''तुम्हारे जैसा चटोर, ओ.. ....माफ करना-बुत-परस्त अगर एक बार उसे (रधिया) को देख ले, तो फिर नोन-सत्तू बांध ाकर उसके पीछे पड़ जाये।''[7] इससे गुलाबचंद के साथ-साथ घनश्याम जैसे युवा पीढ़ी की वैचारिक दुर्गुणता का पर्दाफाश होता है। वहीं (औघड़ कीनाराम) का कथन- धार्मिक उटपटांग एवं लोक मर्यादाओं से परे दिखाता है। वह अछूत महिला के बीमार बच्चे को देखने के बाद कहता है-''भाग, भाग! ससुरी कहीं कीं खिला दे ले जाकर उस साले को-भाग,भाग! नहीं तो, मारते-मारते रांड बना दूंगा।''[8] इस तरह का संवाद अवसर भोजपुरी क्षेत्र के ग्रामीण समाज एवं छोटे कस्बों में भी सुनने को मिलता है। इससे यह पता चलता है कि 'उग्र' का गंवई जिंदगी से गहरा सरोकार रहा है।

साहित्य की विधा में सूक्ति परक संवाद-शैली-योजना का व्यापक फलक पर प्रतिनिधत्व करती है। अघोड़ी (मनुष्यतावाद) का यह कहना- रे सुफेद कपड़े वालों! रास्ता छोड़ो![9] ये सफेद कपड़े वाले कौन हैं? पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने इस सूक्ति के द्वारा समाज के शोषक वर्ग की तरफ ईशारा किया है। ये सुफेदपोश गरीब जनता का शोषण, प्रताड़ना और वेदना देकर, अपने आपको पाफ-साफ दिखाने वाले सूद-दर-सूद लेकर, अछूतों की जिंदगी में नरक का जहर बोए हैं। और सफेद वे-दाग कपड़ा पहनकर कीनाराम के अखाड़े में बड़बोलपन की बातें करते हैं। यह 'उग्र' की 'गागर में सागर' भर देने की शिल्पगत प्रधानता है। जिसमें समाज की विसंगतियों का समग्र चित्र देखने को मिलता है।

बुधुआ के बारह वर्ष बाद जेल से छूटने पर पुत्री रधिया के साथ हुए संवाद सबसे रोचक एवं मार्मिकता बन पड़े हैं। इस संवाद से पाठक की स्वाभाविक सहानुभूति का प्रतिफलन होता है-

''तुम क्या मांगता है? -रधिया
हम तुको मांगता है, बेटी!

हमको? मुझको मांगता है? नाः नाः, तुम्हारे साथ मैं नहीं जाएगा। अभी मेरा बाबा मुझको मांगने आयेगा। वह नैनी जेल में है।''[10]

यह है-पुत्री रधिया की चेतना एवं पिता के कर्म की अनभिज्ञता एक पाठक को सकते में डाल देता है। यह बुधुआ जैसे पिता की कारुणिक वेदना के साथ-साथ गर्व का विषय बन

गया है। यहां 'उग्र' की चिंतन पृष्टभूमि मार्मिक एवं स्पष्टतावादी लेखन से यथार्थ बन गयी है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की शिल्पगत विशेषता का अनोखा रूप भी उपन्यास में देखने को मिलता है। उन्होनें संवेदनाओं के महत्वपूर्ण बिन्दू को भी उजागर किया है। 'उग्र' ने दो वर्ष की अनाथ रधिया के पालन-पोषण के सवाल को लेकर काफी दुखित हैं क्योंकि देश में मानवता का लम्बा इतिहास रहा है, फिर भी कोई अनाथ के लिए नाथ बनना नहीं चाहता है। खैर, पादरी जानसन रधिया का भरण-पोषण करता है। इससे जुड़े मार्मिक संवादों का अनोखा वर्णन 'उग्र' के शब्दों में-''संयोग से पादरी के घर की कुत्तिया ने भी उक्त घटना के दो-तीन दिन पूर्व बच्चे दिए थे। पादरी की राय से वह अनाथ बच्चा भी उसी कुतिया के लिए दुनिया के भले आदमी 'भले मान' शब्द का प्रयोग करने दें-कुत्तिया ने उस बच्चे को भी पाल लिया।''[11] इस कथन के द्वारा 'उग्र' ने संवेदनाओं के छोटे से छोटे प्रसंग के द्वारा मानवीयता के ऊँचे से ऊँचे स्वरूप की अभिव्यक्ति की है।

कहीं -कहीं पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का विचित्र सृजन एक साथ प्रतिबिबिंत होने लगता है। उपन्यास के पात्रों की स्मृति का काल्पनिक यथार्थ सारगर्भित शब्दों में एक साथ आबद्ध मिलता है-'' उनके (मि० यंग) स्मृति पट पर क्रमशः सिगरा का चर्च, रेवरेण्ड राइट और पादरी जानसन से भेंट, औघड़ के दर्शन, रधिया की कथा, उनका औघड़ के साथ चलने को राजी होना, मोटर-बाइक की दौड़, स्त्री स्वातंत्रय समर्थिनी समिति, अंधे पुरूषों का नाच, उनकी स्त्री की स्वतंत्रता का वीभत्स-प्रदर्शन, उन्मुक्त, उत्तेजना, औघड़ का बाधा देना आदि घटनाएं फिर गयीं।''[12] यहां भाषा-शैली का ग्रंथित रूप है। जिसमें औपन्यासिक कल्पना का यथार्थ-रूप देखने को मिलता है। इसे 'उग्र' के वाक्पटु चित्रण का सर्वोत्तम नमूना कहा जा सकता है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के संवाद कला में अश्लीलता का पुट भी मिलता है। घासलेटी आंदोलन इसी सृजनात्मक गुणों के कारण बनारसी दास चतुर्वेदी ने चलाया था। अश्लील संवाद का नायाब नमूना गुलाबचंद के विचारों में देखने को मिलता है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के लेखन में कलात्मक संवादों का सबसे बेहतरीन उदाहरण 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में पेश किया है। 'होश में आने के बाद' शीर्षक में 'उग्र' ने लिखा है कि ''उन्हें मालूम पड़ा, अभी सवेरा नहीं हुआ है, रात्रि के पिछले पहर की घड़ियां सांय-सांय कर रही हैं। आकाश में नक्षत्र-राशि है जरूर, मगर खिली हुई नहीं, कुम्हलायी हुई।''[13] इन संवादों में शाब्दिक विन्यास की कलात्मक शैली का प्रतिबिंबन एवं उत्कृष्ट

लेखन का अनुभव होता है। इस लेखन में 'उग्र' ने कलात्मक भाषा शैली के भ्रम को तोड़ दिया है। 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में रचनाशील कलात्मक संवादों का परिचय मिलता है। यदि रमेशचंद्र शाह के शब्दों में कहे-''पूरा समाज जिस भाषा के साथ जीता है, उसमें और उसी के साथ जीते हुए अगर हम उस जीवन-संदर्भ को पहचानते हैं, और उस भाषा में रचना करते हैं , तो हमारा समाज भी रचनाशील हो सकता है।''[14] 'उग्र' का रचना-संसार ही निखरा हुआ है या- सच पूछिए तो भाषा रचनाकार को निखारती है और रचनाकार भाषा को निखारता है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की औपन्यासिक संवाद-योजना का खरा दारोमदार रचनाकार एवं भाषा के यथार्थ अभिव्यक्ति में झलकता है।

भाषा शैली

20वीं एवं 21वीं सदी के आधुनिक प्रणाली से संचालित जगत में राजनैतिक एवं वैज्ञानिक उथल-पुथल से युक्त समाज में अभूतपूर्व बदलाव आया है। इसके साथ-साथ चाहे-अनचाहे परंपरागत मूल्यों में भी ह्रास होता जा रहा है। इस परिवर्तन में भाषायी रूढ़ियों का टूटना लाजमीं है। लेकिन संप्रेषण के क्षेत्र में नये-नये मानदण्डों को कैसे स्वीकार किया जाय। यह आज चर्चा का विषय बना हुआ है। कोई कलाकार भाषायी जरूरत के अनुकूल जिंदगी की भाषा को किस हद तक तरजीह देता है, उसकी अपनी कुशल भाषा-शैली के प्रयोग पर निर्भर है। क्योंकि ''सम्पूर्ण यथार्थ तो देखा नहीं जा सकता है...क्योंकि ....अन्यत्र देखी हुई मछली के आधार पर...अनुभव और कल्पना के सहारे ही हम किसी यथार्थ को सम्पूर्णता प्रदान कर सकते हैं।''[15] वैसे सटीक एवं उपयुक्त सजीव भाषा का प्रयोग 'उग्र' ने अपने उपन्यासों में किया है। 'उग्र' की भाषा चयन की दृष्टिगत प्रकिया में शब्द अत्यंत प्रवाह गति से खिंचते चले आए हैं।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की भाषा में तेज प्रवाह है। इस प्रवाह में कुछ व्यक्त और अव्यक्त करने की कला ही 'उग्र' की अभिव्यंजना शक्ति में व्यापक वृद्धि कर देता है। यदि राजेन्द्र यादव के शब्दों में कहे-''भेद खोलने की इच्छा और छिपाने की सावधानी के बीच''[16]'उग्र' की भाषा गतिशीलता लिए हुए है। 'उग्र' के लेखन पद्धति विद्रोह के साथ-साथ रोचक, धारदार और भण्डाफोड़ के उद्देश्य के साथ आगे बढ़ती है। 'उग्र' को लेखन में किसी बात से डर-भय का नामोनिशान नहीं रहा है। वह कभी भी पीछे मूड़कर नहीं देखते। उन्हें लेखन के विशिष्ट रचाव, गतिशील विन्यास, संवाद, अन्वेषण की ताजगी का एहसास था।

तभी उन्होंने उर्दू-फारसी के शब्दों (दरियाफ्त, नायाब, अशआर, गुंजायश, खसम, आजिजी, शोहदई, फ़ाहशा, हूर, बगलगीर, वाकिफ़कारी, मसरफ, ताज्जुब, मुखबिर, आशिकी, दफ्तर, नेस्ताबूत, बुत-परस्त आदि), संस्कृत के शब्दों (वसुधैव कुटुम्बकम्, एवमस्तु, गमनोद्यत, राक्षसाकृति, भूतो न भविष्यति आदि), अंग्रेजी के शब्दों (मोटर-बाइक, पुलिस, एटिकेट, म्युनिसिपल, पेंसिल, सिगरेट, ग्रामोफोन, सोसायटी आदि) और सबसे अधिक तद्भव शब्दों (मेहनत-मजूरी, मेहरारू, भेयिा, भतार, सेरभर, झक, फेकुआ, रूपुल्ली, छिछोर, अंगाछा, ठेका-वेका, उठौना, भुरकुस, गोबरैले आदि) का प्रयोग 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में किया है। इससे औपन्यासिक रचना की भाषा, सुखद अचरज और चरम सार्थकता को प्राप्त हुई है। 'उग्र' की भाषा की शिल्पगत-मजबूती, जरूरी स्पष्टतः रवानी, ताकत, आकर्षक और मर्मस्पर्शी संवेदना में परिभाषित हुई हैं।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की भाषा-शैली बोध गम्य होने का एक कारण है-लोकोत्तियो, मुहावरों ण्वं सूक्तियों का कुशल प्रयोग। उन्होंने विषय-वस्तु एवं संवाद के अनुरूप लोकोत्तियों का प्रयोग किया है यथा- 'तरवार की धार पैछावनो है'', ''जब्बर चोर सेंध मे गावे'', ''पतितन को सरताज'', ''कूत्ता भूंका, न पाहरू जागा'', ''नोन-सत्तू बांधकर पीछे पड़ जाय'' ''पत्थर से पारस होना''इत्यादि इसके साथ-साथ 'उग्र' ने चारित्रिक विषय के अनुसार मुहावरों का स्पष्ट प्रयोग भी किया है जैसे- ''मिट्टी पलीत होना'', ''आंखे चार करना'', ''अंधेरे में ओढ़नी'', ''दूजो रंग न चढ़ना'', ''बालू से तेल निकालने की आशा'' और ''दालभात में मूसलचंद'' इत्यादि। 'उग्र' ने 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में लोकगीतों का भी यथा स्थान उपयोग किया है यथा-''ताड़ तले बजे सितार मेरी जान, ताड़ी ने मुझकों दिवाना किया'' अथवा ''अगिया लागी, सुन्दर बन जरिगयो हो। अगिया लागी।'' इन लोकध ुनों के प्रयोग में गंवई जिंदगी की खुशबू का एहसास बहुत आसानी से किया जा सकता है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने भाषा-की प्रवाहशीलता को बनाए रखने के लिए सूक्तियों का भी प्रयोग किया है। उन्होंने लिखा है कि ''लोहा जब खूब गर्म हो तभी उसे भरपूर ठोंक-पीटकर सीधा कर लेना चाहिए''[17] या ''औरत के बीच में आते ही, पुरूष-पुरूष की पुरानी-से-पुरानी मित्रता भी, झंझावत में पड़ी हुई रूई की तरह, न जाने वैसे, न जाने क्यों, न जाने किस ओर उड़ जाती है।''[18] आदि सूक्तियां 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास की रसात्मक अनुभूति में सर्वोपरि महत्व रखती हैं। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में उपमाओं के स्थान को भी सुसिनश्चित किया है। वे लिखते हैं कि '' वह (रधिया) लिली

के पुष्प की तरह सुकुमार और सुंदरी है।''[19] इस प्रकार 'उग्र' ने उपन्यास लेखन के समस्त विविध आयामों को 'बुधुआ की बेटी' में समुचित स्थान दिया गया है।

अंत में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के शिल्पगत प्रधानता को ध्यान में रख कर यह कहना ज्यादा उचित होगा कि 'उग्र' शहरी जीवन को आधार बनाकर साहित्य रचनेवाले कुशल शिल्पी हैं। परन्तु उनके संपूर्ण लेखन की खासियत यह भी है कि वे किसी दायरे विशेष में रह कर कलम नहीं चलाते हैं, बल्कि कथानक के अनुरूप कल्पना की उड़ान, भाषा सौष्ठव, अर्थगांभीर्य एवं प्रवाहशीलता का रसात्मक बोध और जन भाषा की धड़कती चेतना का प्रभावशाली एवं बेधड़क प्रयोग 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में किया है। यदि आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में कहें '' 'उग्र' की भाषा बड़ी अनूठी, चपलता और आकर्षक वैचित्र के साथ चलती है। उस ढंग की भाषा उन्हीं की उपन्यासों और 'चांदनी' ऐसी कहानियों में ही मिल सकती है।''[20]

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि शिल्प-विधान की दृष्टि से यह उपन्यास अपनी एक अलग पहचान रखता है। कथानक, पात्र, संवाद, बनावटीपन से दूर यथार्थ रूप ग्रहण किये हैं। युगानुरूप, पात्रानुकूल, शब्दों का कहने का ढंग चुस्ती लिए है। और उपन्यास के पात्र के भावों को शब्द सटीक मिले हैं.....आदि।

संदर्भ-सूची

१- साच्चिदानन्द वात्स्यायन (संख्या) - सामाजिक यथार्थ और कथा भाषा - पृष्ठ संख्या - ५४-५५

२- 'उग्र' - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या -११४

३- सच्चिदानन्द वात्स्यायन(संख्या) - सामाजिक यथार्थ और कथा-भाषा - पृष्ठ संख्या -५६

४- 'उग्र - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या -१

५- 'उग्र - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या -१०७

६- 'उग्र - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या -१०८

७- 'उग्र - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या -१

८- 'उग्र - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या -२०

९- 'उग्र - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या -३३

१०- 'उग्र - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या -१०३-१०४

११- 'उग्र - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या -१२०-१२१

१२- 'उग्र - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या -८५

१३- 'उग्र - बुधुआ की बेटी - पृष्ठ संख्या -८५

१४- सच्चिदानन्द वात्स्यायन (संख्या) - सामाजिक यथार्थ और कथा-भाषा - पृष्ठ-संख्या-२७

१५- सच्चिदानन्द वात्स्यायन (संख्या) - सामाजिक यथार्थ और कथा-भाषा - पृष्ठ-संख्या-३३

१६- ---------हंस (मासिक) - मई - १९९४ - पृष्ठ-संख्या-३५

१७- ---------'उग्र'(मासिक) - बुधुआ की बेटी -पृष्ठ-संख्या-२०१

१८- ---------'उग्र'(मासिक) - बुधुआ की बेटी -पृष्ठ-संख्या-१५३

१९- ---------'उग्र'(मासिक) - बुधुआ की बेटी -पृष्ठ-संख्या-२२०

२०- रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास -पृष्ठ-संख्या-२९७

उपसंहार

आज साहित्य में उपन्यास और समाज दोनों एक दूसरे के पूरक बन गये हैं, परन्तु समाज उपन्यास विधा के बगैर गतिशीलता पा सकता है। सामाजिक रूप से प्रतिबद्ध लेखक सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति जरूर करता है चाहे साहित्य में कल्पना का समावेश क्यों किया हो? इसके बावजूद यथार्थ-बोध की विजय के लिए लेखक में सत्य की प्यास और यथार्थ से बेहद लगाव होना जरूरी हो जाता है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के जीवन एवं लेखन का एक-एक कतरा समाजोपयोगी बन गया है। यही 'उग्र' के सृजन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। कुछ विशेष कारणों से उपन्यासकार 'उग्र' का संपूर्ण मूल्यांकन कर पाने में आलोचक संकुचित दिखते हैं जबकि समीक्षकों ने प्रेमचंद के उपन्यास लेखन का स्पष्ट मूल्यांकन किया है वहीं प्रेमचंद से भिन्न 'उग्र' का सामाजिक एवं साहित्यिक सरोकार रहा है। 'उग्र' का प्रेमचंद से भी अधिक तीव्र एवं कटु यथार्थ का अनुभव था। सामाजिक विद्रुपताओं के सृजन के प्रति 'उग्र' का गहरा लगाव रहा है। इन्हीं कारणों से 'उग्र' ने साहित्यिक उन्मेष में नग्न यथार्थ के कुशल चितेरे का परिचय दिया है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' हिंदी साहित्य में अतियथार्थवादी लेखन के प्रणेता माने जाते हैं। वे सच्चे समाज हित चिंतक थे। उन्होंने सृजनात्मक अभिव्यक्ति में किसी से समझौता नहीं किया। वे दो-टूक शब्दों में समाज के नग्न चेहरे को बड़े निर्भिकता से दिखाने का जोखिम भरा कार्य करते रहे। उन्होंने सत्य की पक्षधरता को ही गले लगाया। उसने ''भारतीय समाज के बिगड़ते स्वास्थ्य पर निरोग प्रकाश''[1] डालने के सृजनात्मक उद्देश्य के साथ जुड़ने की सफल कोशिश की और ''सामाजिक रोगों का एक्स-रे फोटो''[2] खींचा, साथ ही साथ सामाजिक चेहरे की ''काजल काली तस्वीरों''[3] को अंकित करने का सफल प्रयास किया है। और उसने चाहा है कि ''हर तरह से औरतें पुरुष के बराबर की बन जायें!''[4] यही है-'उग्र' की यथार्थ चेतना का प्रतिमान।

यथार्थ-बोध को लेकर स्तांदल, बाल्जाक, गागोल, तुर्गनेव, टॉलस्टॉय, कुप्रीन, गोर्की, चेखव, ग्रिशिंग, जार्ज मूर, सॉमरसेट मॉम, जोला, मोपासा और गॉल्सवर्दी इत्यादि लेखकों ने अपने-अपने तार्किक एवं ओजस्वी विचार व्यक्त किये हैं। इन सभी विद्वानों ने कथा-साहित्य

के वर्ण विषय को यथा-तथ्य लेखन पर विशेष बल दिया है। वहीं इन लेखकों में विभेद भी रहा है। कुछ का मानना रहा है कि यथार्थ लेखन में कोई बनी-बनायी परिपाटी नहीं चल सकती है। बल्कि परिवेश के अनुरूप उपजी हुई कटु यथार्थ की फोटोग्राफी होती है। उसमें सामाजिक यथार्थ-बोध के नग्न रूप के अभिव्यक्ति का विकास होता है। इन सारी बातों के बावजूद जार्ज लूकाच को औपन्यासिक दायित्व-बोध से संतोष नहीं हुआ और उसने 'थियॉरी आफ नावॅल' (1916 ई०) लिख दिया।

हिंदी जगत के प्रसिद्ध एवं सामाजिक रूप से प्रतिबद्ध रचनाकारों ने जीवन के भोगे हुए यथार्थ को सीमा विशेष में रखकर देखने की कोशिश की है, मगर पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने उन लोगों से बिल्कुल भिन्न और अलग हटकर साहित्य का सृजन किया है, और अनुभूति की ईमानदारी को व्यक्त करना ही सच्चे यथार्थवाद की कसौटी स्वीकार किया है। चेखव जैसे रूसी रचनाकार 'उग्र' की उद्देश्यशील रचनाशीलता को उचित मानते हुए, वे -'निरूद्देश्य, स्वतः स्फूर्ति रचनाशीलता के दावेदारों को पागल ही समझते रहे हैं।' इन्हीं विचारों को अधिक प्रामाणिक बनाने के लिए जार्ज लूकाच ने 'स्टडी इन यूरोपियन रीयलीज्म' की भूमिका में-''ईमानदारी को सच्चे यथार्थवाद की कसौटी कहा है।''[5] यह बहुत ही स्पष्ट एवं समय की मांग है कि रचनात्मकता में ईमानदारी व्यक्त किया जाये क्योंकि लेखक समाज की दुर्बलताओं, क्रूरताओं एवं पीड़ाओं की अतल गहराई में जाकर पाशविक प्रवृतियों को सांसारिक प्रकाश में लाने की कोशिश करता है। यही यथार्थ चित्रण का मापदंड है और सही उत्तरदायित्वबोध भी। इसी प्रवृत्ति को पाश्चात्य एवं भारतीय दोनों यथार्थवादी लेखकों ने अधिक महत्व दिया है, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' उन्हीं विचारकों में से एक हैं।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के सृजन क्षेत्र से देश के प्रथम प्रधानमंत्री भी प्रभावित थे। महात्मा गांधी ने तो 'उग्र' के नग्न चित्रण की खुले रूप से हिमायत की है। उन्होंने कहा है कि-''लेखक ने अमानुषिक व्यवहार पर घृणा ही पैदा की है।''[6] 'उग्र' का मानना रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति समाज का यथार्थ अपनी नंगी आंखों से देखता है, परन्तु समाज के कुत्सित रूपों को साहित्य का अंग सभी नहीं बना पाते हैं। ऐसे में यह जरूरी हो जाता है कि लेखक साहित्य के मुख्य उद्देश्य को पारिभाषित करके और उसे शब्दबद्ध करे इसी को प्रेमचंद के शब्दों में-''वे साहित्य को समाज का दर्पण मात्र नहीं मानते बल्कि दीपक मानते हैं जिसका काम प्रकाश फैलाना है।''[7]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' साहित्य सृजन के सरोकारों को सबसे पहले स्पष्ट कर देने वाले सृजन हार थे। उन्होंने एक बेहरीन साहित्य लेखन के लिए कलागत कुशलता से ज्यादा लेखक के जीवन संघर्ष में निहित मानवीय-सार्थकता का अन्वेषण और फिर उसको जिंदादिली विचार प्रामाणिकता और संघर्ष-निष्ठा के साथ बयान कर सकने वाली मर्मस्पर्शी ईमानदारी की आवश्यकता उन्हें हमेशा से महसूस होती रही है। यही वजह है कि 'वे हमेशा दृढ़ एवं चट्टान की तरह, सत्य के तेज से मस्तक ताने ओजस्वी स्वरों के साथ आगे बढ़ते हैं। 'उग्र' समाज के हाशिये के लोगों के बुनियादी सवालों को रचनात्मक हस्तक्षेप के द्वारा सहानुभूति , सहयोग और हिस्सेदारी के बजाय विद्रोही तेवर का परिचय देते हैं।

'उग्र' के रचना-संसार में नारी और दलित समाज के घावों का जख्म व्यापक रूप से स्थान पाया है। उसको जिधर से उलट-पलट कर देखते हैं, उसमें सदियों पुरानी सड़ी-गली मानसिकता का मवाद भरा है। जिसकी अनुभूति कर पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' उग्र स्वभाव के बन गए। 'उग्र' का अभावग्रस्त जीवन, पेट की भूख के लिए मिली दर-दर की ठोकरें और सामाजिक एवं पारिवारिक पीड़ाओं के ताजे जख्म कभी चैन से बैठने नहीं दिए। वे हमेशा 'बेचैन' रहते। मराठी लेखक शरण कुमार लिंबाले की तरह ''बचपन में मैंने जो सुना, मेरे मन पर वह आज भी ताजे जख्म की तरह अंकित है, इसी कारण वह आज शब्दों के रूप में फूट रहा है।''[8] पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का संपूर्ण जीवन इन्हीं विवशताओं एवं दुविधाओं में कटा था। उन्होंने अतियथार्थवादी साहित्य सृजन के कीमत को भुगतने के लिए हमेशा तैयार रहे क्योंकि उन्हें अपने-आप पर पूरा भरोसा था कि जो कुछ लिखते थे वैसी परिस्थितियां समाज में बहुतायत रूप में देखने को मिलती हैं।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के साथ ही साथ अधिकांश लेखकों ने उपेक्षित समाज की दीनता पर कलम चलाई है। अमृतलाल नागर नें भी 'अछूत समस्या' पर बहुत कुछ लिखा है और प्रेमचंद के जमाने से ऐसे प्रयास होते रहे हैं। परन्तु 'उग्र' के लेखन में जो ताजगी है, रवानगी है, जो उथल-पुथल है, जो स्पष्टता है, जो मर्म है। वह शायद ही किसी के सृजन में दिखती है। 'उग्र' की नजर में 'अछूत वही नहीं है जो गंदे साफ करते हैं, अछूत वे धूर्त भी हैं जो काले समाज व्यवस्था को कायम रखना चाहते हैं, ईश्वर को क्रय-विक्रय का समान बनाकर मैली चादर ओढ़े हुए हैं और स्त्रियों को सिर्फ भोग की सीमा में बांधे रखना चाहते हैं।' इन सारी विसंगतियों की जड़ को ऊपर से नीचे देखकर ही 'उग्र' ने लिखा है कि ''स्त्रियों को इस स्वार्थी पुरुष-जाति के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करनी होगी''[9]और साथ ही साथ

''अछूतों को आपस में एक करके इन ऊँचों की अक्ल ठिकाने करनी होंगी।''[10] इस प्रकार पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की रचना-दृष्टि का सारगर्भित स्वरूप बहुत ही स्पष्ट और बे-लाग-लपेट दिखाई पड़ता है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के समस्त रचनाओं में 'अंतर्वस्तु के सत्य' (आर्डोनो) 'अनुभूति की संरचना' (रेमण्ड विलियम्स), 'अर्थ के मर्म' (लावेंथल) और 'विश्व-दृष्टि' (गोल्डमान) का दर्शन होता है। इनकी रचनाओं के विषय-वस्तु 'हिंदू-मुस्लिम एकता और संप्रदायवाद का विरोध, यौन-शोषण के तमाम हथकंडों का पर्दाफाश, दलित समाज के नवोंषकारी चेतना, नारी-जीवन की आधुनिक कसौटी पर मीमांसा जीवन के बाह्याडंबर, कुरुतियों-अंधविश्वासों, तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत, ओझा-सोखा जैसे अतार्किक विचारों का विरोध, सामंतवादी साम्राज्य में जन चेतना का जागरण, देश में पनप रही भष्टाचारी-चोरबाजारी एवं कदाचार, वेश्यावृति जैसी सामाजिक विद्रुपताओं का विरोध, फिल्मीं जीवन के द्वारा विखंडित होती कला और संस्कृति के मूल्यों पर प्रकाश डालना, समाज में अनमेल विवाह से उत्पन्न दुष्परिणामें की व्यापक फोटोग्राफी, रचनाकार और प्रकाशक के बीच बनने वाली खाईं की सारगर्भित चर्चा और रूप के सौदागरों द्वारा भगायी गयी नवयुवतियों के यौन शोषण आदि हैं। यह सारी समस्याएं अपने ज्वलंत रूप में 21वीं सदी के दहलीज पर मुंह बाये खड़ी हैं। आज का अधिकांश मानस धर्म के नाम पर मर-मिटना चाहता है। वह ईश्वर और मनुष्य के रिश्ते को परिभाषित नहीं करना चाहता है। बिल्कुल अंधों की तरह बिना देखे, सोचे-समझे धर्म के उन्माद में अपने को समर्पित कर देने की कोशिश में लगा हुआ है। इन सारी उपद्रवकारी मंसूबों को पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' धूमिल कर देना चाहते हैं। उन्होंने लिखा है कि -''मंदिर, मस्जिद, गिरजा आदि मनुष्य की कल्पना है, और मनुष्य ईश्वर की कल्पना है। क्षुद्र मनुष्य की कल्पना (मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर आदि) के लिए ईश्वर की कल्पना करना मनुष्यों का नाश करना इतना बड़ा पाप है, जिसका कोई पर्याप्त दंड भी नहीं हो सकता।''[11] मगर 'उग्र' की कौन सुनता है? यदि पढ़ा-लिखा समाज नहीं सुना तो अनपढ़ों से क्या उम्मीद? शिक्षित लोगों ने ही 'घासलेटी आंदोलन' चलाकर 'उग्र' के नाक और पैर दोनो काटने में लगे रहे। और उन्हें अछूत बना डाला।

'बुधुआ की बेटी' उपन्यास का 'उग्र-उवाच' शीर्षक में लेखक ने अपनी कृति की उपयुक्तता को बता डाला है। ''जो लिख दिया! लिख दिया, बज्र-लेख''[12] परन्तु इस उपन्यास का वर्ण-विषय ''दलितोद्धार का सवाल 36-37 बरस पहले से काफी सुलझ चुका है।''[13]

इसके बावजूद 'उग्र' को इस बात का विश्वास है कि ''जबतक तथाकथित अछूतों का सम्यक-सुधार-उद्धार....नहीं हो जाता, तब तक, मनुष्यानंद (बुधुआ की बेटी) का विषय और उद्देश्य आवश्यक-आकर्षक बराबर बना ही रहेगा।''[14]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में जिन-जिन मूल समस्याओं से टकराने की कोशिश की गई है, उन सभी समस्याओं को आज भी प्रगतिशील समाज शाश्वत समस्याओं के रूप में स्वीकार करता आ रहा है। यह अपरिपक्व सोच एवं नासमझ का ही प्रतीक है। 'उग्र' ने मनुष्यानंद के औघड़ चरित्र को गढ़कर अंध-भक्ति में डुबी समाज को अपनी तरफ आकर्षित करनेवाले उद्देश्य में शायद उतनी कामयाबी नहीं मिलती, जितनी उपन्यास में अछूतों, नारी आदि सभी की समस्याओं को लेकर है। 'उग्र' ने लिखा है कि-''हिंदू मूर्ख हैं, उन्हें अभी संसार के चरणों की अनेक ठोकरें खानी हैं। इसीलिए उनके यहां इतनी जातियां, उप-जातियां, ऊँच-नीच और अछूत हैं।''[15] दूसरी तरफ ईसाई समाज की खोज-खबर लेते हुए 'उग्र' कहते हैं कि -''आप उन हिंदूओं से अच्छे जरूर हैं, पर बिल्कुल अच्छे हैं, यह बात नहीं है। .....इन अभागों को हिंदू अछूत से उठाकर ईसाई अछूत बना देते हैं।''[16]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने मुस्लिम कदाचारों को उपन्यास में जगह दिया है। लियाकत हुसैन और रहमान की कालगुजारियां मुस्लिम समाज की सोच का नतीजा है। लियाकत कहता है-''औरतों को बच्चा देने का काम मुझे बहुत ज्यादा पसंद आया है।''[17] और रहमान क़ा यह कहना है कि -''लखनऊ में मेरा एक दोस्त ठीक यही रोजगार करता है।''[18] यह है मुस्लिम समाज का उत्तरदायित्वबोध जिसको 'उग्र' ने अपनी आंखों से ओझल नहीं होने दिया, बल्कि उन्होंने धर्म के नाम पर हो रहे शोषण का बड़ा ही निर्भिकता से भंडा-फोड़ किया।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के होश संभालते ही 'वेश्या या रंडी' शब्द से उनके कान गूंज उठे। यही वजह है कि 'उग्र' ने पुरुषवादी समाज के पंजे से नारी प्रताड़ना की विविध ा एवं अनंत रेखाएं साहित्य के दायरे में खींच लाया है। और नारी के दैहिक शोषण मुक्त पात्रों का सृजन किया। 'उग्र' के लेखन में शोषणवादी समाज से मोरचा संभालने वाली रधिया भंगिन (बुधुआ की बेटी), फिरोजी (सरकार तुम्हारी आंखों में) और चांदनी (चांदनी कहानी) जैसे पात्रों का कुशलता पूर्वक चित्रण किया। दूसरी तरफ 'उग्र' ने अछूत लोगों को नवचेतना से भर दिया था। तभी वे यह कहने का साहस कर पाये थे कि -''क्यों साफ करें

आदमी का पाखाना? जिसका मल हो वही उसे फेंके भी क्यों नही? अपने पापों की गठरी दूसरे के सिर पर लाद कर आदमी किसी विशेष अधिकार से सुखी होना चाहता है? हम अब मैला नहीं फेंकेंगे-छिः! छिः!! बड़ा गंदा काम है। इसी से हमारे लोक-परलोक दोनों बिगड़ते हैं।''[19]

'बुधुआ की बेटी' उपन्यास का बुधुआ अछूतों के जीवन का प्रतिनिधित्व करता है, रधिया नारी चेतना की पक्षधर है और मनुष्यानंद हरिजनोद्धार की सफलता का प्रतीक है, ये तीनों पात्र, जाति-धर्म, लिंग के दायरे से निकल कर इंसानियत की न्यायिक एवं वैज्ञानिक तलाश के लिए समर्पित दिखाए गए हैं। इनका अपना-अपना वर्गीय आधार है। मनुष्यानंद मे गांधीवादी चरित्र की अधिक प्रधानता है। 'उग्र' ने समय की मांग के अनुरूप बुधुआ की बेटी के पात्रों को गढ़ा था। उन्होंने हिंदू समाज की विद्रुपताओं को खुले रूप में चित्रित किया है। 'उग्र' ने शोषण तंत्र के समूचे छल-छद्म, स्त्रियों पर पुरुषों द्वारा किये जाने वाले अत्याचार और मजहब के नाम पर उन्माद फैलाने वालों की पोल खोल दी और अन्य कथाकारों से अपने को अलग किया। इसीलिए डॉ रामस्वरूप चतुवेर्दी जैसे लेखकों ने लिखा हैं कि -''बेचन शर्मा 'उग्र' के उपन्यासों में सामाजिक विद्रूपता अपने व्योरों में अंकित हुए हैं। जिसके कारण तात्कालीन पत्रकारिता और समीक्षा के क्षेत्र में व्यापक प्रतिक्रिया हुई''[20]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने शब्दों को मानवीय विचारों के सांचे में डालने की पूरजोर कोशिश की। उन्होंने स्वीकार किया कि -''आज भी पाण्डेय वेचन शर्मा 'उग्र' को लिखना खाक-पत्थर आता है, आप जानते हैं....!''[21] 'उग्र' की कुशल भाषा ने तमाम सामाजिक-सांस्कृतिक रहस्यों का भेदन किया और पैसे के लिए लिखने वालों को जोरदार शब्दों में ललकारा ''वे एक पन्ना जोरदार या मौलिक या सरस नहीं लिख सकते जो लिखते भी हैं पेटार्थ, जो सोचते हैं वह केवल स्वार्थ।''[22] 'उग्र' को साहित्य के आचार्यो की उधेड़-बुन और ''भेद खोलने की इच्छा और छिपाने की सावधानी के बीच''[23]किसी डर भय की चिंता नहीं रही उन्होंने जन भाषा की धड़कती चेतना के साथ रचनात्मक हस्तक्षेप की आवश्यकता दिखाई। वे यथार्थ चित्रण में कुशलता का अनुभव किया। और प्रभावी संप्रेषण की सार्थकता को दुविधा रहित बनाया। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है कि-''यथार्थ को रचने की और फिर उस रचे हुए यथार्थ की संप्रेषण की''[23]उपयोगिता को उग्र ने बोध गम्य बनाया है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की भाषा में भ्रष्टता, भोगवाद, सामाजिक मजबुरियों, दुखों,

भटकाव के साथ-साथ सहयोग, सहानुभूति, हिस्सेदारी, भांडा-फोड़, विद्रोह आदि का दिग्दर्शन होता है। वहीं दूसरी तरफ रोचक, धारदार, निराभिमान संवाद, लेखन में तेज प्रवाह और स्पष्टता, प्रभावशाली गतिशील विन्यास एवं आकर्षक मर्म स्पर्शी भाषा-शिल्प का सुखद अनुभव होता है। इन सारी रवानगी में जीवन की अथाह-अटूट वेदना की भंगिमा अखरता है। इन भाषायी पहचान में सब तरह की मुक्ति का स्वर गूंजता है। इसको भवदेव पाण्डेय के शब्दों में कहें-'''उग्र' का रचना-संसार.....देश की मुक्ति, दलितो की मुक्ति, नारियों की मुक्ति, भोगवादी कारागार में बंद साहित्य व संस्कृति की मुक्ति, पूंजीवादी शोषण की जटिल होती स्थितियों से मुक्ति। 'उग्र' अपने समय के बदलते बाजारों और उच्च-मध्यवर्ग के सामंतीकृत कुत्सित रूपों पर पूरी उग्रता से टूट पड़े थे। ''[25]

संदर्भ-सूची

१. 'उग्र'-कढ़ी में कोयला-पृष्ठ संख्या-७

२. वही.....पृष्ठ संख्या-७

३ उग्र-चॉकलेट (कहानी)-पृष्ठ संख्या-ख

४. उग्र-जी जी जी-पृष्ठ संख्या-७

५. मैनेजर पाण्डेय-शब्द और कर्म-पृष्ठ संख्या-२०

६. 'मतवाला'-६ जुलाई, १९२९, पृष्ठ संख्या-१२

७. प्रेमचंद-साहित्य का उद्देश्य-पृष्ठ संख्या-४५

८. शरण कुमार लिंबाले-अक्कारमाशी, पृष्ठ संख्या-९

९. उग्र- बुधुआ की बेटी, पृष्ठ संख्या-९९

१०. वही.....पृष्ठ संख्या-२०८

११. उग्र-दोजख! नरक!!-ऐसी होली खेलो लाल (संग्रह), पृष्ठ संख्या-३१

१२. उग्र-बुधुआ की बेटी-'उग्र-उवाच', पृष्ठ संख्या-ग

१३. वही.....पृष्ठ संख्या-ग

१४ वही.....पृष्ठ संख्या-घ

१५ वही.....पृष्ठ संख्या-७६

१६. वही.....पृष्ठ संख्या-७५

१७. वही.....पृष्ठ संख्या-३९

१८. वही.....पृष्ठ संख्या-३९

१९. वही.....पृष्ठ संख्या-२०

२०. रामस्वरूप चतुर्वेदी- हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ संख्या-१६९

२१. उग्र-अपनी खबर-पृष्ठ संख्या-८०

२२. उग्र-सरकार तुम्हारी आंखों में (भूमिका)-पृष्ठ संख्या-१

२३. 'हंस' (मासिक)-अंक मई-१९९४, पृष्ठ संख्या-३५

२४. सच्चिदानंद वात्स्यायन-सामाजिक यथार्थ और कथा भाषा-पृष्ठ संख्या-४४

२५. 'आलोचना'-अंक-अक्टूबर-दिसंबर, २०००, पृष्ठ संख्या-५०

ग्रंथानुक्रमणिका

✡ आधार-ग्रंथ

✡ संदर्भ-ग्रंथ

✡ पत्र-पत्रिकाएं

आधार-ग्रंथः

१ पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' : बुधुआ की बेटी (मनुष्यानन्द)
रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, दिल्ली
चौथा संस्करणः १९६४ ई०

२. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र': कढ़ी में कोयला (उपन्यास)
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करणः १९९९

३. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र': देश के लिए (कहानी संग्रह)
प्रवीण प्रकाशन मेहरौली, नई-दिल्ली
संस्करणः १९८८

४. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र': खुदाराम और चन्द हसीनो के खुतूत (कहानी संग्रह)
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करणः १९८७

५. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र': गंगामाता (उपन्यास)
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली
संस्करणः-१९९३

६. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र': घण्टा (उपन्यास)
निधि प्रकाशन काश्मीरी गेट, दिल्ली
संस्करणः १९८६

७. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र': फागुन के दिन चार (उपन्यस)
रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, दिल्ली
संस्करणः १९८५

८. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र': चित्र विचित्र (कहानी संग्रह)
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली
संस्करणः १९६४

९. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र': चाकलेट (कहानी संग्रह)
टंडन ब्रदर्स प्रकाशन,
कलकत्ता

१०. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र': सनकी अमीर (कहानी संग्रह)
गंगा पुस्तकमाला कार्यालय प्रकाशन
लखनऊ,
संस्करणः १९५२

११. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र': 'उग्र' की श्रेष्ठ कहानियां
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करणः १९६१

१२. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र': यह कंचन सी काया (कहानी संगह)
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली
संस्करणः १९६४

१३. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र': ऐसी होली खेलो लाल (कहानी संख्या)
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली
संस्करण -१९६४

१४. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र': जब सारा आलम सोता है (कहानी संग्रह)
अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करणः १९९०

१५. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र': मेरी मां (कहानी संग्रह)
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली
संस्करण: १९६४

१६. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र': पोली इमारत (कहानी संग्रह)
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली
संस्करण: १९६४

१७. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र': अपनी खबर (आत्मकथा)
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण: १९८४

१८. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र': जीजीजी (उपन्यास)
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण: १९९९

१९. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र': दिल्ली का दलाल (उपन्यास)
शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण: १९५६

संदर्भ-ग्रंथः

१. अरूणा चतुर्वेदी: गाँधी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास
कल्पकार प्रकाशन, लखनउ-७
प्रथम संस्करण: १९८३

२. अलेक्सांद्र पश्किन: (अनु डॉ मदनलाल 'मधु') कहानियां-उपन्यास-खण्ड-२ चुनी हुई रचनाएं
प्रगति प्रकाशन, मास्को
संस्करण: १९८२

३. सं -अमृता मेहता: इवान बूनिन, गोगोल, चेखोव तथा रिथेऊ- कक्षा-साहित्य
बी आर पब्लिशिंग कार्पोरेशन, नई दिल्ली
संस्करण: १९९९

४. अमृत राय: आधुनिक भाव बोध की संज्ञा
हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
संस्करण: १९८७

५. कलावती प्रकाश: प्रेमचंद एवं समकालीन भारतीय उपन्यास-कार
साहित्यागार प्रकाशन,
जयपुर संस्करण-१९९८

६. कालका प्रसाद बृहद् हिन्दी कोश
ज्ञानमण्डल लिमिटेड प्रकाशन, वाराणसी
संस्करण: २०००

७. सं०-कुंवर पाल सिंह: प्रेमचन्द और जनवादी साहित्य की परम्परा
भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली-६३
प्रथम संस्करण: १९८०

८. कुसुम मेघवाल: हिन्दी उपन्यास और दलित नारी
संघी प्रकाशन, जयपुर- १७
प्रथम संस्करण: १९९१

९. के एल शर्मा: भारतीय समाज
राष्टीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण-१९९६

१०. जार्ज लूकाचः अनु० कर्व सिंह चौहान — समकालीन यथार्थवाद, वितोशा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-१६६६

११. दंगल झाल्टेः — उपन्यास समीक्षा के नए प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-१६८७

१२. देवेन्द्र चौबेः — कथाकार अमृतलाल नागर, जगतराम एण्ड संस, दिल्ली, संस्करणः १६६४

१३. नूरजहांः — हिन्दी कहानी में यथार्थवाद, अभिनव भारती ४२, सम्मेललन मार्ग, इलाहाबाद, संस्करणः १६७६

१४. सं०-प्रणव वंधोपाध्यायः — दलित प्रसंग, शिलालेख प्रकाशन, दिल्ली, संस्करणः १६६६

१५. प्रेमचंदः — साहित्य का उद्देश्य, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करणः १६६७

१६. पी के पद्मजाः — हिन्दी उपन्यास साहित्य पर वैचारिक आन्दोलनों का प्रभाव, पंकज पब्लिकेशन, गढ़ मुक्तेश्वर गाजियाबाद, (उ०प्र०), संस्करणः १६८६

१७. पीताम्बर सरोदेः — आधुनिक हिन्दी उपन्यासो में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना, अतुल प्रकाशन, ब्रहम नगर कानपुर-१२, संस्करणः १६८७

१८. सं०-फादर कामिल बुल्केः — अंगरेजी हिन्दी कोश, एस चंद एण्ड कम्पनी लि प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करणः २०००

१६. बेलिंस्की, चर्नीशंवस्कीः दोब्रोल्युबोव, हर्जन, अनु०-नरोत्तम नागर — दर्शन, साहित्य और आलोचना, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा) लि, नई दिल्ली, दूसरा हिन्दी संस्करणः १६८०

२०. भवदेव पाण्डेयः — पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, संस्करणः २००१

२१. मधुधरः — 'उग्र' का कथा साहित्य, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्करणः १६७७

२२. मैनेजर पाण्डेयः — साहित्य के समाज के शास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ, संस्करणः १६८६

२३. मैनेजर पाण्डेयः — संकट के बावजूद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करणः १६६८

२४. मैनेजर पाण्डेयः — शब्द और कर्म, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करणः १६६७

२५. मैनेजर पाण्डेयः
साहित्य और इतिहास दृष्टि
पीपुल्स लिटरेसी प्रकाशन, दिल्ली
संस्करणः १९८१

२६. मोहनदास नैमिशरायः
अपने-अपने पिंजरे
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण-१९८१

२७. रत्नाकर पाण्डेयः
उग्र और उनका साहित्य
नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी
संस्करणः १९६९

२८. रणवीर रांग्राः
हिन्दी उपन्यासः अछूते संदर्भ
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
संस्करणः १९८६

२९. सं०-राजशेखर व्यासः
अवतार प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण': १९८७

३०. सं०-राजशेखर व्यासः
उग्र के सात रंग
प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
संस्करणः १९८७

३१. राम अहुजाः
भारतीय समाज रावत
पब्लिकेशन्स जयपुर
संस्करणः २०००

३२. रामदरश मिश्रः
हिन्दी उपन्यासः एक अन्तर्यात्रा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
द्वितिय संस्करणः १९८२

३३. राहुल सांस्कृत्यायनः
रामराज्य और मार्क्सवाद
पीपुलस पब्लिशिंग हाउस प्रा लि, नई दिल्ली
सातवां संस्करणः १९९५

३४. राम स्वरूप चतुर्वेदीः
हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
सातवां संस्करणः १९९७

३५. राम विलास शर्माः
निराला की साहित्य साधना भाग -१
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली संस्करणः १९७१

३६. रामचन्द्र शुक्लः
हिन्दी साहितय का इतिहास
नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन, वाराणसी
तीसवां संस्करणः संवत २०५२ वि

३७. रैल्फ फॉक्सः
अनु०-नरोत्तम नागर
उपन्यास और लोक जीवन
पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्रा लि०, नई दिल्ली
तीसरा संस्करणः १९८०

३८. विद्या भूषण डी आरः
सचदेवा
समाज शास्त्र के सिद्धांत
किताब महल प्रकाश्न, इलाहाबाद
संस्करणः २००१

३९. शरण कुमार लिंबालेः
अनु०-रमणिका गुप्ता
दलित साहित्य का सौन्र्यशस्त्र
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करणः २०००

४० सच्चिदानन्द रायः
हिन्दी-उपन्यास सांस्कृतिक एवं मानवतावादी चेतना
राजीव प्रकाशन, इलाहाबार
संस्करणः १९७९

४१. सं० सच्चिदानन्द वात्स्यानः सामाजिक यथार्थ और कथा-भाषा
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
प्रथम संस्करणः १९८६
४२. हरिकृष्ण रावतः समाज शास्त्र विश्वकोश
राव पब्लिकेशन जयपुर
द्वितिय संस्करणः १९९८
४३. त्रिभुवन सिंहः हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी
चतुर्थ संस्करणः १९६५

पत्र- पत्रिकाएं

१. अम्बेडकर इन इण्डियाः (मासिक) सं० दयानाथ निगम
डा अम्बेडकर समाज कल्याण प्रतिष्ठान प्रकाशन (लखनउ)
तमुकहीराज, कुशीनगर (उत्तरप्रदेश)
संस्करण मार्च-२००२
२. 'आजकल' मासिकः सं०- सुभाष सेतिया
प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली
३. 'आलोचना' त्रैमासिकः सं०-नामवर सिंह
अक्टूबर-दिसंबर-२०००
राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
४. 'कथाक्रम' मासिकः सं०-शैलेन्द्र सागर
दलित विशषांक, नवंबर-२०००
४, टांजिट हास्टल, महानगर, लखनऊ
५. 'प्रसारिका' त्रैमासिकः जनवरी-मार्च-१९५६
(कलाके पक्ष में नैतिक अनैतिक लेखक-रामचंद्र टंडन)
६. 'ठिठोली' होली-१९६८ (वार्षिक)
स्व पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'
लेखक-हरिशंकर शर्मा वाराणसी
७. 'ठिठोली' होली-१९६९ (वार्षिक)
औधड़ कलाकार 'उग्र' (लेख)
लेखक-कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर
८. 'ठिठोली' होली-१९७० (वार्षिक)
'उग्र' की उग्रताः यशपाल जैन
९. 'मतवाला' साप्ताहिक मार्च-अप्रैल-मई-जून -जूलाई अंक, सन-१९२९
मतवाला प्रेस, कलकत्ता
१०. 'उग्र' दैनिक स्वदेश के लिए लेख २१ मई-१९२३ ई०
ज्ञानमण्डल प्रकाशन, वाराणसी, उत्तर प्रदेश
११. 'आज' दैनिक स्वदेश के लिए लेख २१ मई -१९२३ ई०
ज्ञानमण्डल प्रकाशन, वाराणसी
१२. 'कल के लिए' मासिक सं० कन्हैया लाल शर्मा
प्रिंस प्रकाशन, जयपुर, राजस्थान
संस्करणः जनवरी-१९२९
१३. 'सामयिक वार्ता' मासिक किशन पटनायक
१४ , सुप्रीम एनक्लेव मयुर विहार फेज-१, दिल्ली-९१

१४. 'साक्षात्कार' मासिक — सं० भगवत रावत
मध्यप्रदेश साहित्य परिषद, संस्कृति भवन, भोपाल-३
१५. 'साहित्य संदेश' — कहानी विशेषांक १९५३
कहानी ओर उपन्यास : एक समीक्षा (लेख) हजारी प्रसाद द्विवेदी
जनवरी-फरवरी, १९५३
१६. 'हंस' हिन्दी मासिक — सं० राजेन्द्र यादव
अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली
१७. 'हम दलित' मासिक — सं०-प्रेम कपाड़िया
सोशल एक्शन ट्रस्ट, १०, इन्स्टीट्यूशनल एरिया लोदी रोड, नई दिल्ली-३